"सत्य-जीवन"

(अध्यात्मिक ज्ञान तथा वैदिक सिद्धान्तों पर प्रतिपादित एक अनुपम उपन्यास)

लेखक

लक्षमन प्रसाद 'प्रेमानन्द'

प्रकाशक

नरेन्द्र सिंहल
बी. ७६, रमन मार्ग,
तिलक नगर, जयपुर

प्रथम बार
१०००

मूल्य

विषय सूची

ओ३म् शंनौ मा: शमु न: शंनौ अस्तु ।
शंन: पुरन्धि: समु सन्तु राय: ॥
शंन: सत्यस्य सुयमस्य शंस:
शंनौ अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥
ऋ: ५ : ३ : ९ : २ :

हे ईश्वर आप और आप का दिया हुआ ऐश्वर्य हमारे लिये
ारक हो। आपकी कृपा से हमारी सुखकारक प्रशंसा सदैव
सार के धारण करने वाले आप तथा वायु, प्राण और सब
ानन्द दायक हों। सत्य यथार्थ धर्म सुसंयम और जितेन्द्रिय
युक्त जो प्रशंसा न्यायकारी सब संसार में प्रसिद्ध है वह
नन्द और शान्तियुक्त हमारे लिये हो। अनन्त सामर्थ्ययुक्त
कल्याणकारक होओ।

श्रेय और प्रेय के बीच लिखी यह कथा है। आज उपन्यास और
कथा साहित्य के लिये विशेष जन रुचि है, पर साथ ही
हितकर यह है कि हम विरासत में मिले प्राचीन दर्शन
और तत्व ज्ञान को बिल्कुल न भुलादें। यह
पुस्तक आज के रुचिकर माध्यम से ज्ञान
को प्रसारित करने का एक प्रयत्न है।
आशा है कि पाठक इससे कथा
का सा आनन्द प्राप्त
करेंगे और मनन
कर ज्ञान की
वृद्धि कर
सकेंगे।

लेखक

सम्मति

"सत्य जीवन" कथा को मैंने ध्यान से पढ़ कर देखा। इस ग्रन्थ के लेखक ने दो प्रतिज्ञाऐं की हैं। एक वैदिक सिद्धान्त का केवल प्रतिपादन तथा दूसरे दार्शनिक मीमांसा। इसमें लेखक महोदय पूर्णतया सफल हुये है। बहुत ही सुन्दर ढंग से वैदिक सिद्धान्तों का विवेचन दार्शनिक आधार पर किया गया है। यह वैदिक सिद्धान्तों पर अपने ढंग का निराला ग्रन्थ है। इस से बहुत ही लाभ पहुँचेगा। साधारण से साधारण व्यक्ति भी गहन से गहन वैदिक सिद्धान्तों को समझने में समर्थ हो जावेगा। लेखक महोदय धन्यवाद के पात्र हैं।

बुद्ध देव मीरपुरी, शास्त्रार्थ
महारथी, वेद वाचस्पति

तिलक नगर, नई देहली

प्राक्कथन

उपन्यास साहित्य की सर्व प्रिय विद्या है। उच्चकोटि के विद्वानों से साधारण पाठकों तक इसका अध्ययन पूर्ण रुचि से किया जाता है। यद्यपि हिन्दी साहित्य में इसका प्रादुर्भाव आधुनिक युग में ही विशिष्ट रूप से हुआ है, फिर भी हिन्दी साहित्य के उपन्यासों का भंडार बेजोड़ है।

उपन्यास व्यक्ति के विशिष्ट जीवन काल का चित्रण करने वाला ऐसा घटनाक्रम है जो व्यक्ति के चतुर्दिक बने समाजिक ढाँचे का स्पर्श करता हुआ उद्देश्य की ओर बढ़ता है। लम्बी कहानी से इसी अर्थ में वह भिन्न है। उपन्यास में सामाजिक दशा का विश्लेषण एवं अध्ययन अवश्य होता है। उपन्यास का कला पक्ष जितना गम्भीर एवं सुगढ़ होगा, उतना ही आकर्षक उपन्यास बन पायेगा। शैली भाषा, घटना क्रम और चरित्र चित्रण उपन्यास के मुख्य अंग है, जिनके आधार पर किसी उपन्यास को कसौटी पर कसा जा सकता है।

"सत्य जीवन" उपन्यास में लेखक के जीवन की अनुभूतियाँ अभिव्यक्त है। यद्यपि लेखक का उपन्यास लिखने के क्षेत्र में पहला ही प्रयत्न है फिर भी जिस चतुराई से उन्होने उपन्यास का कलेवर गढ़ा है, वह सराहनीय है। उपन्यास का घटनाक्रम अथवा कथा वस्तु अति साधारण है, एक ठाकुर साहव के यहाँ उनके लड़के के मित्रगण आते हैं, डाकुओं द्वारा ठाकुर साहव एवम् मित्र प्रेमचन्द को उठा लिया जाता है। वहाँ छुटकारे के प्रयत्न में एक सन्यासी से उनकी भेंट होती है। डाकू सरदार की पुत्री उनके साथ हो जाती है। ठाकुर साहव के पुत्र के दुर्घटना वशात् मर जाने पर परिवार के अन्य सदस्य भी इस असार संसार से मुक्ति

पा जाते हैं। ठाकुर साहब वृन्दावन चले जाते हैं। प्रेमचन्द का गोपी से विवाह हो जाता है। प्रेमचन्द वैदिक परम्परानुसार अपना जीवन यापन करता है, अपने पुत्र को घर का भार सौंप वाणप्रस्थ एवं सन्यास आश्रम से प्रवेश करता है। इस तरह घटनाक्रम में पूर्णतया वैदिक जीवन की झाँकी प्रदर्शित होती है। लेखक का उद्देश्य वैदिक जीवन का चित्रण करना था। वे चाहते थे कि आर्य समाज के सिद्धान्तों का प्रतिपादन हो। अतएव उपन्यास वर्णनात्मक न होकर पूर्णतया उद्देश्यात्मक हो गया है।

ठाकुर साहब के संस्कारों में सनातन धर्म का असर है, तो प्रेमचन्द के ऊपर आधुनिक शिक्षा की नास्तिकता का। ठाकुर साहब का चरित्र धीरे धीरे विकसित नहीं हुआ है। अपितु प्रारम्भ से ही परिपक्व मस्तिष्क के व्यक्ति के रूप में ठाकुर साहब हमारे समक्ष आते हैं। प्रेमचन्द के चरित्र का अवश्य विकास हुआ है। अन्य पात्र भी अपने अपने स्थान पर सजग हैं।

उपन्यास की भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न है, जो साधारण पाठक के लिये भी बोध गम्य है। विद्वान लेखक ने भाषा को कहीं भी दुरूह नहीं होने दिया है। यद्यपि विषय अति गम्भीर था। दार्शनिक सिद्धान्तों की व्याख्या बिना पंडित्यपूर्ण भाषा के सुघड़ नहीं बन सकती किन्तु लेखक ने सर्वत्र सरल भाषा का ही प्रयोग किया है।

घटनाक्रम में लेखक, जहाँ जहाँ सैद्धान्तिक वार्तालाप का प्रसंग आया है, जमकर बैठ गये हैं तथा तथ्य तक पहुँचने की ओर उनकी कल्पना बेलगाम दौड़ी है। सामाजिक स्थिति के चित्रण से आत्मा, परमात्मा, जीव आध्यात्मिक एवं भौतकवाद की व्याख्या करने में उन्होंने अपने उपन्यास का कलेवर खड़ा किया है। प्रत्येक सर्ग में सिद्धान्तों के सम्बन्ध के वार्तालाप व

विचाराभिव्यक्ति उपलब्ध है। आर्य समाज के आत्मा, जीव और प्रकृति के त्रिगुण सिद्धान्त की व्याख्या की गई है। अद्वैतवाद के दर्शन भी उनकी बुलबुलारूपी जीव समुद्र रूपी ब्रह्म से उत्पन्न होकर भी अपने को अलग मानने लगना है। मुक्ति में स्पष्ट होते हैं। आर्य समाज में जहाँ दार्शनिक सिद्धान्तों की अपेक्षा जीवन निर्माण पर बल दिया, उसी प्रकार लेखक ने अपने पात्रों के चरित्र में वैदिक परम्परा को ला खड़ा किया है। डाकू पुत्री गोपी के उपेक्षा भाव का जो अभाव सर्वत्र देखा गया है वह नारी के सम्मान की अभिव्यक्ति करता है। विवाह को आडम्बर न मान कर ही गोपी और प्रेमचन्द के विवाह की निष्पत्ति लेखक कर पाया है। अंग्रेजी शिक्षा के प्रति उपेक्षा भाव आर्य समाज की अपनी विशेषता है। दहेज प्रथा के विरुद्ध उनकी धारणा कृष्ण कुमार की पुत्री एवं प्रेमचन्द के पुत्र के विवाह में व्यक्त है। व्यक्ति चरित्रवान हो, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे, समय पर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे। बाणप्रस्थ आश्रम एवं सन्यास आश्रम में भी समय पर प्रवेश करे। आदि वैदिक प्रथाओं का निर्वाह प्रेमचन्द के जीवन में पूर्ण रूपेण हुआ है।

उपन्यास को शैली प्राचीन है। लेखक द्वारा प्रसंग की अभिव्यक्ति ? "वाह रे भाग्य", 'ओह भगवान आपकी अजब शान है।" आदि के द्वारा घटनाक्रम की व्याख्या करना, पुरानी शैली के प्रतीक हैं। वार्तालाप विशेषकर दार्शनिक चिन्तन के प्रसंगों से लदे हुए हैं। घटना क्रम की गति कहीं बहुत धीरे धीरे कीड़े की तरह रेंगती है, तो कहीं छलाँग लगा कर दौड़ती सी प्रतीत होती है। सन्यासी का सम्पर्क अत्यधिक विस्तृत बन गया है। किन्तु इसके बिना सम्भवत, लेखक के उद्देश्य की पूर्ति सम्भव नहीं होती। प्रेमचन्द के विवाह के पश्चात् कृष्ण कुमार और

प्रेमचन्द का पौढ़ जीवन हठात् आ गया है। इससे घटना क्रम में स्पष्ट छलाँग भर कर चलने की स्थिति स्पष्ट होती है।

अन्तिम सर्ग में। पाठकगण आपको उस साँसारिक ·········केवल अंतिम दृश्य दिखाना चाहता हूँ। "आदि कहकर स्वतः दृश्य वर्णन करते हुये, ठाकुर साहब, प्रेमचन्द आदि का संकल्प मात्र से मृत्यु का वरण बताया है।" उपन्यास में स्थान स्थान या पथ खण्डों का प्रयोग भी सिद्धान्तों की व्याख्या के लिये ही कहा गया है।

सिद्धान्तों का गहन चिन्तन होते हुये भी उपन्यास रुचिकर एवं पाठक को आकर्षित करने वाला है। यह विद्वान लेखक की सफलता है। "सत्य जीवन" लिख कर लेखक ने हिन्दी साहित्य में एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की है। आप से इस ओर विशेष प्रगति की आशा है।

माधव शर्मा,
एम० ए०
श्रमिक सदन
चूरू (राज०)

दो शब्द

पाठकगण : मैं सर्व प्रथम उस तर्क शिरोमणि को अपना मस्तक नत करता हूँ जिसकी कृपा से मुझ जैसे अल्पज्ञ को जो विद्वानों के चरणों की धूलि के समान भी नहीं है एक ऐसी पुस्तक लिखने का साहस हुआ जिससे कदाचित किसी जिज्ञासु की अभिलाषा वैदिक सिद्धान्तों के जानने की ओर अग्रसर हो सके। इस पुस्तक के लिखने में प्रकाशक को कोई व्यक्तिगत लाभ उठाना अभिष्ट नहीं हैं वरन उपन्यास पढ़ने वालों की रुचि को वैदिक सिद्धान्तों की ओर फेर कर कुछ जिज्ञासा उत्पन्न कराने की है। लेखक के मस्तिष्क में स्वामी दर्शनानन्द जी के रचे हुये सूत्रों का और शास्त्रों तथा उपनिषदों तथा अन्य ग्रन्थों के अनुवादों का ज्ञान पर्याप्त मात्रा में एकत्रित था जिस को आजकल का नवयुवक सुनना भी पसन्द नहीं करता, इसलिये यह उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया गया ताकि उपन्यासों में रुचि रखने वाले पाठकवृन्द उसके पाठ से उपन्यास जैसा आनन्द उपलब्ध कर सके। सम्भव है इस उपन्यास को पढ़ कर कुछ वैदिक सिद्धान्तों से अवगत होने की ओर किसी की रुचि हो जावे और फिर ऋषि मुनियों के रचे हुये ग्रन्थों का स्वाध्याय करके अपना कल्याण कर सके।

इस पुस्तक की रचना में श्री चेतराम जी तोमर एम० ए० साहित्यरत्न, लेक्चरार तथा हिन्दी अध्यक्ष, डी. ए. वी. इ० कालेज बुलन्दशहर, श्री देवेन्द्र शर्मा, कृषि सूचना प्रसार अधिकारी, कृषि विभाग, राजस्थान, जयपुर व श्री एल० एन० शर्मा आई० पी० एस० का सर्वाधिक योग रहा है। जिसका मैं हृदय से आभारी हूँ।

"पुस्तक के रूप में विचारों की अभिव्यक्ति", वैदिक सिद्धान्तों के कतिपय ग्रन्थों के अध्ययन व मेरे पुत्र रघुनाथ एवं नरेन्द्र का समय समय पर आग्रह का परिणाम है।

लेखक

लेखक
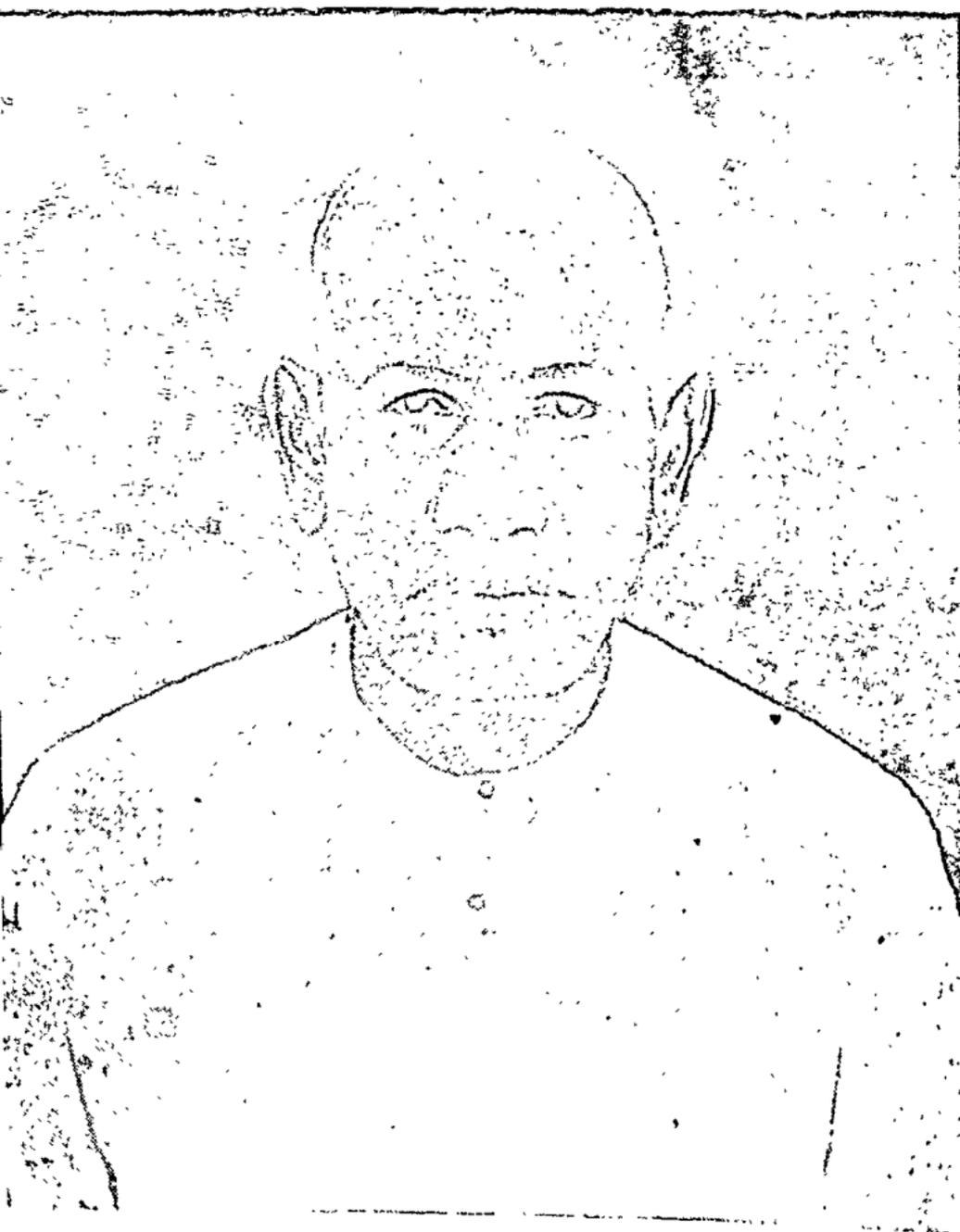
स्वर्गीय श्री लक्ष्मन प्रसाद जी 'प्रेमानन्द'

प्रथम खण्ड

जिज्ञासा

मैं कौन हूँ, क्या हूँ, कहाँ से आया हूँ, मैंने अपने आप तो नहीं पैदा किया। फिर अब क्या करूं। पेट तो जानवर भरते हैं। फिर मुझे बुद्धि क्यों प्रदान की गई है। इस प्रक के विचारों में मग्न एक यात्री किसी नगर में होकर जा रहा था उसने देखा कि एक पन्डित जी अपनी पाठशाला में जो उन्हो उस नगर में खोल रक्खी थी कुछ विद्यार्थियों को शिक्षा दे रहे थे छुट्टी होने से एक घन्टा पूर्व विद्यार्थियों को आदेश मिला कि पहा याद करें। सब छात्र एक पंक्ति में खड़े हो गये और एक ने नम्बु खड़े होकर पहाड़ा बुलवाना आरम्भ किया।

"सात सत्ते बयालीस। अन्य छात्रों ने भी कहा। सात सत्ते बयालीस"

यात्री छात्रों की ओर देख कर कहने लगा, ओ, बच्चो तनिक पहाड़ा बन्द करो। तुम भूल कर रहे हो, सात सत्ते उनन्चास होते है।

विद्यार्थियों ने यात्री की ओर देखा, परन्तु पहाड़ा जारी रहा, सात सत्ते बयालीस।

यात्री स्तब्ध सा रह गया और मन में सोचने लगा कि बच्चे तो वानर सेना हैं। मैंने एक ऐसे तथ्य को बतलाना चाहा था जो कि सूर्य के समान सत्य है, पर बच्चों ने सुनना भी नहीं

चाहा। इनको समझाना मेरा काम नहीं। पन्डित जी जब
तो स्वयं ही ठीक करा देंगे।

वह आगे बढ़ा। कुछ ही दूर चला था कि एक मनुष्य ल
का सहारा लेकर टटोलता हुआ पग बढ़ा रहा था। एक न
चार पाँच गज आगे बह रही थी जो चौड़ी कम और गहरी अ
थी और उसमें गन्दा पानी बह रहा था। यात्री ने सोचा
बेचारा लंगड़ा भी है और अन्धा भी, चलो इसकी सहायता कर
उसे पुकारा, भाई ठहरो, आगे का मार्ग भयावह है। उत्तर मि
मुझे अपनी लाठी का सहारा है। समस्त आयु इसी के सह
बीती है। अपना पग बढ़ाते हुए तुरन्त नाली में गिर गया। दूस
टांग में भी चोट आयी। यात्री ने सोचा,

उससे दुनिया में नहीं कोई ज्यादा बदबख्त,
जो न दाना हो न दानाओं का माने कहना।
आज आफत से बची जान तो कल खैर नहीं,
ऐसे नादान का मुश्किल है सलामत रहना॥

यात्री को अपने सम्बन्धी के यहाँ एक गाँव जाना था। मा
में एक रेल का स्टेशन पड़ा। वह थकान का अनुभव कर रहा था
कुछ देर आराम करने के लिये बैठ गया। कुछ ही देर बाद ए
ग्रामीण वहाँ आकर बैठा और भोजन करने लगा। सवारी गा
आने में अभी कुछ विलम्ब था। एक दिशा से मालगाड़ी आयी
और चली गई। दूसरी दिशा से दूसरी मालगाड़ी आयी और चल
गयी। फिर तीसरी और चौथी आयीं वे भी चली गईं। ग्रामीण
कहने लगा,—"ये गाड़ियाँ कहां से आती है? और कहाँ चली
जाती हैं? इन्हें कौन बनाता है? और कितनी बनाता है? क्या
यह कोई जादू का खेल है?

यात्री:—भाई, कोई वस्तु न जादू से आती है और न जादू से कहीं

ती है। कारखानों में गाड़ियां बनती हैं और एक दिशा से दूसरी
गा की ओर जाकर वहीं लौट आया करती हैं। कोई वस्तु अभाव
भाव में नहीं जाती और न कोई भाव पदार्थ अभाव को प्राप्त
ता है, अर्थात जो वस्तु कहीं है ही नहीं, वह किसी भी रूप में
नहीं सकती और जो वस्तु है वह किसी न किसी रूप में सदा
गी। यही विश्व का अटल सिद्धान्त है।
मीण: भगवान् ही जाने' यह सब हमारी बुद्धि से तो बाहर है।
यात्री उठा और अपने मार्ग पर चल दिया। मार्ग में उसे
ास लगी। आगे एक झौंपड़ी दिखाई दी जो प्याऊ मालूम होती
। वहां पहुंचने पर देखा कि एक महाराज कुयें से पानी खींच-
र राहगीरों को पिलाता जाता है।
यात्री ने जेब मे हाथ डाला तो इकन्नी हाथ लगी। महाराज
देकर पानी पीने की इच्छा प्रगट की। महाराज ने डोल उठा
र पानी निकालना चाहा तो रस्सी टूट गयी और डोल पानी में
र गया। यात्री ने अपने माथे पर हाथ रखा।
हाराज: अब मेरे पास पानी खींचने का कोई साधन नहीं है।
ाटे में गरम पानी मौजूद है, यदि आप पीना चाहें तो पीलें।
त्री:—महाराज, तनिक इसे छाया में ठन्डे स्थान पर रख दो।
ही ठन्डा हो जायगा।
हाराज:—गरम पानी कैसे ठन्डा हो जायगा ?
त्री:– भाई, पानी का ऐसा ही स्वभाव है। गरमी में गरम हो
ाता है। गरमी अलग होने पर अपने असली रूप में आकर ठन्डा
जाता है। स्वभाविक गुणों का कभी लोप नहीं होता।
हाराज:—मैं तुम्हारी बात को नहीं समझा। मेरे पास जैसा भी
नी है पीलो।
यात्री के मस्तिष्क को आघात लगा और विचारमग्न हो
गे बढ़ा। हे प्रभू, कितनी मूर्खता है। साधारण सी बात भी

समझ में नहीं आयी। संसार में कोई बुद्धि से काम लेना ही नह
चाहता है।

दो मील चल कर गांव की सीमा आ गयी। कुछ नवयुव
कबड्डी खेल रहे थे। ज्यों ही यात्री वहां पहुंचा कि खेल समाप्
हो गया। एक लड़का अपनी अन्टी टटोलने लगा। पूछने प
मालूम हुआ कि उसके कुछ दाम जो अन्टी में लगे हुए थे, गि
पड़े। कुछ अंधेरा हो गया था। यात्री ने नवयुवक को परामर्श
दिया कि देखो वह लालटेन रक्खी हुई है। प्रकाश में तलाश कर
लो। नवयुवक ने ऐसा ही किया। यात्री बोला—

यात्रीः—तुम वहां क्या कर रहे हो ?

नवयुवकः—अपने पैसों को प्रकाश में तलाश कर रहा हूँ।

यात्रीः—खेल तो यहां रहे थे वहां प्रकाश में पैसे कहां मिलेंगे ?

नवयुवकः—आपने ही तो कहा था कि प्रकाश में तलाश करो।

यात्रीः—पर तुम तो प्रकाश में वहां तलाश कर रहे हो जहां वे नहीं हैं। जो वस्तु जहाँ होती है वहीं मिला करती है। जहां नहीं होती वहां नहीं मिला करती। जड़ पदार्थ में यह शक्ति नहीं कि वह स्वयं चल कर वहां पहुंच जावे जहाँ कोई उसकी तलाश कर रहा है। प्रकाश यहां लाओ और यहां तलाश करो। अवश्य मिल जायगी।

नवयुवकः—भाग्य में होगा तो मिल जायेंगे। मेरे वसका नहीं कि तलाश करता रहूँ।

यात्रीः—भाग्य में तो खोना लिखा था। तभी तो वे गिरे। जो काम अपनी इच्छा के विरुद्ध बन जाये या बिगड़ जाये वही भाग्य हुआ करता है। पुरुषार्थ करने पर सफल ता का मिलना सम्भव है। वैसे तुम्हारी इच्छा है।

नवयुवक थक चुका था, निराश होकर चुपचाप चल दिया।

यात्री ने भी मुख मोड़ा और अपने सम्बन्धी के मकान पर आवाज लगायी। सम्बन्धी बाहर निकला। दोनों नमस्ते एक दूसरे को कह कर घर के भीतर चले गये।

सम्बन्धी: भाई, कहां से आ रहे हो ?

यात्री:—जहाँ रहता हूँ वहीं से आ रहा हूँ।

सम्बन्धी:—कहो, कैसे आना हुआ ?

यात्री. पैदल ही आ रहा हूँ। मार्ग में अद्भुत मूर्खता का दृश्य देखता आया हूँ। हर एक मनुष्य अपने विचारों में मस्त है। कोई किसी की बात सुनना ही नहीं चाहता, चाहे वह बात कितनी ही सत्य तथा न्यायसंगत हो।

सम्बन्धी: तुम्हारा पागलपन अभी चल ही रहा है।

यात्री. और चलता ही रहेगा जब तक कि मैं सत्य की खोज न करलू।

सम्बन्धी: अच्छा, थक गये होगे, अब तनिक आराम करो। कल सत्य नारायण की कथा है। पूर्णमासी का दिन है। उसके लिये मैं सामान लेकर अभी आता हूँ।

('सत्य नारायण की कथा' एक पुस्तक है जिस में सत्य भाषण और सत्याचरण का महत्व वर्णन किया गया है। उसमें वास्तविक सत्य नारायण की कथा का वर्णन नहीं है।)

यात्री पलंग पर लेट गया और सोचने लगा, अहा! बड़ा अच्छा अवसर मिला, सत्य नारायण की कथा। अब तो सचमुच सत्य का साक्षात्कार हो जायगा। इतना सोच ही रहा था कि सम्बन्धी सामान लेकर वापिस आ गया। भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर फिर वार्तालाप आरम्भ हुआ।

यात्री: भाई कथा कौन कहेगा ?

सम्बन्धी:—एक बड़े पन्डित आये हुये हैं। मैंने एक संकल्प किया

था, वह पूरा हो गया। पन्डित जी को बड़े आग्रह से कथा कहने को तैयार किया है।

यात्री:—धन्य हैं आप जैसे परोपकारी पुण्यात्माओं को जो सत्य का प्रचार करते हैं। मेरा तो यही लक्ष्य है कि सत्य की खोज करूं। मैं क्या हूँ? क्यों पैदा हुआ? किसने पैदा किया? कहां जाना है? इस जीवन का क्या उद्देश्य है? यह संसार क्या तमाशा है? पहले बच्चा था, अब जवान हुआ बुढ़ापा आ गया फिर न मालूम कौन इस शरीर से निकल कर कहीं को चला जायगा? जिसके निकल जाने के बाद यह शरीर सड़ने लगेगा बस इस जीवन की यही प्रक्रिया है। हर एक मनुष्य को देखो, अपनी हस्ती को कोई नहीं समझता कि मैं कौन बला हूँ। इस पर भी इतना घमन्ड है कि दूसरों से कहता है, "मेरे सामने तेरी यह मजाल कि जबान हिलाता है। जबान कटवा लूँगा। तुझे दुनियां से नाबूद कर दूंगा। तुमको ऐसे खूँटे से बंधवाऊँगा कि पानी भी न मिलेगा इत्यादि।" मानों संसार का पट्टा उसी के नाम लिख दिया गया है।

सम्बन्धी:—भाई, तुमने तो अपना भाषण आरम्भ कर दिया। बहुत दिनों में मिले हो। कुछ अपनी कहो, दूसरों की सुनो।

यात्री: अपनी तो मैं कह ही रहा था, तुम अपनी कहो।

सम्बन्धी:—भाई चार साल विवाह किये हो गये। गांव में अध्यापन कर रहा हूँ। मां बाप को तो शादी के बाद से अलग करके अपने सिर का भार उतार दिया। अब मौज ही मौज है। ७०) मासिक वेतन के मिल जाते हैं। विद्यार्थियों के घर से लकड़ी, दाल, साग, दूध तथा त्यौहारों पर पकवान और मिष्ठान भी आ जाता है।

यात्री:—इस मौज से क्या होगा? केवल खाना पीना और बाल बच्चों का पालन पोषण का क्या परिणाम होगा। जब बड़े होकर

बच्चों का विवाह हो जायगा। वे भी तुमसे अलग होकर अपना भार सिर से उतार देंगे। जिनके पालन पोषण में अपने जीवन का एक एक पल बिताया वे ही तुमको भी फटकार देंगे।

सम्बन्धी:—(बात काट कर) भाई अब तो सोने का समय आगया। कल का बात होगी। सवेरे उठ कर बहुत काम करना है।

यात्री को नींद ने घेर लिया। सवेरे आँख खुली तो खड़-खड़ का शब्द सुनायी देने लगा। भोजन तैयार हुआ। वेदी बनायी गयी। चौकी बिछाई गयी। पन्डित जी भी आ गये और कथा आरम्भ हुई। सत्य नारायण की कथा के कराने का महात्मय और बोल कर न कराने का दुष्परिणाम पढ़ कर सुनाया गया। कथा समाप्त हुई। पोथी बाँधी जाने लगी।

यात्री: पन्डित जी महाराज, क्या कथा समाप्त हो गयी ?

पन्डित जी: हां समाप्त हो गयी। अब प्रसाद ग्रहण करके खाना पीना आरम्भ करें।

यात्री: पर आपने तो सत्य नारायण की कथा कराने के लाभ और न कराने के दुष्परिणाम की कहानी सुनायी। वह सत्य नारायण की कथा क्या है ? मैं तो इसी आशा से बैठा हूँ कि सत्य को जानूँ और वास्तविक तथ्य को पहचानूँ।

पन्डित जी: सत्य, सत्य का जानना क्या बच्चों को खेल है ? कौन सत्य की खोज करता है ? न किसी को सत्य से प्रेम है और न कोई सत्य संगत ही है। न कोई जिज्ञासु है फिर। वास्तविकता कसी। सब लोग सांसारिक सुख ही चाहते हैं और उसी में लिप्त रहते हैं। वास्तविकता की ओर तो किसी का ध्यान भी नहीं जाता।

यात्री:—निस्संदेह महाराज, मैं भी यही अनुभव करता चला आया हूँ। परन्तु दुनियां ऐसे लोगों से शून्य भी तो नहीं हैं जो वास्तविक सत्य को जानना चाहते हैं :

पन्डित जी:—हां, हां, दुनियाँ ऐसे लोगों से शून्य नहीं रह सकत परन्तु विद्वान पुरुष अपनी विद्वत्ता के अभिमान में मस्त रहते और धनाढ्य पुरुष अपने धन के नशे में चूर। शेष साधारण पुरु है जो सांसारिक सुख समृद्धि की खोज में परेशान रह कर देवताओं की पूजा में लगे रहते हैं। यह कथा जो मैंने सुनायी है वह ऐसे ह लोगों को सुनायी जाती है जिनका मस्तिष्क दुनियादारी से फुरस न मिलने के कारण सत्य की खोज में अग्रसर नहीं होता। सत को जानकर मनुष्य फिर इस संसार का नहीं रहता। वरन् उसक दृष्टिकोण प्राकृतिक नियम के अनुसार हो जाता है। यदि तुमक सत्य की खोज करने की अभिलाषा है तो केवल सुनने मात्र से का नहीं चलेगा। उस पर मनन तथा चिन्तन करना होगा। क्य आप इसे रुचिकर समझेंगे ?

यात्री:—मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ मैं आपकी अमृतवाणी क पिपासु हूँ और जो कुछ आप कहेंगे उसे अमृत समझ कर अपनी तृष्णा शान्त करना चाहता हूँ। इसके लिये अवश्य मनन और चिन्तन करने के लिये तैयार हूँ।

पन्डित जी:— मैं अनाधिकारियों को सत्य की बात समझाना मूर्खता समझता हूँ। क्योंकि वे सूक्ष्म विचारों को न समझ कर उल्टा हमें नास्तिक बनाने का दोष लगाते हैं और कहने लगते हैं कि यह क्या बकता है। हमारी श्रद्धा तथा भावना से अलग करना चाहता है।

यात्री:—भगवन, मैं चाहता हूँ की ससार कि वास्तविकता को पहचानूँ और इसी उलझन मे पड़ा रहता हूँ कि कौन मुझको इस संसार में लाया क्यों मुझको इस झमेले में डाल दिया है। कोई दार्शनिक, कोई विज्ञानवेत्ता, कोई विद्वान, कोई मत मुझको यह बात नहीं समझा पाया है। केवल उल्टे सीधे गलत सलत, निराधार बात बनाते हैं।

पण्डित जीः—भाई विज्ञानवेत्ता तो प्रकृति के गुणों की खोज में लगे हुए हैं। वे इस चेतन तथा अध्यात्मिक उन्नति में कोई रुचि नहीं रखते हैं। विद्वान पुरुष सांसारिक ज्ञान से सम्बन्ध रखते हैं। मत मतान्तरों के प्रवृर्तकों को स्वय यह ज्ञान नहीं था कि वे कौन थे। अध्यात्मिक सिद्धान्त केवल आज कल एक रहा है जिसको वेदान्त कहते है, परन्तु आज वेदान्त का भी एक विशुद्धस्वरूप नहीं रहा। लगभग ढाई हजार वर्ष से अद्वैतवादियों ने इसे मिथ्यावाद में परिवर्तित कर दिया है। यद्यपि उस समय की परिस्थिति के अनुसार यह परिवर्तित किया गया था, परन्तु फिर भी आज कल वही चल रहा है। ईश्वर का ज्ञान तो सदैव रहा है, सदैव रहता है और सदैव रहेगा।

(नोटः—अद्वैतवादी वह व्यक्ति है जो केवल "ब्रह्म ही सब कुछ है और अन्यथा जो कुछ है वह स्वप्नवत और मिथ्या है" यह मानते है।)

यदि श्रवण मनन की योग्यता रखते हो और मन में जिज्ञासा है तो भोजन करके शिवालय पर आना। मैं तुमको कथा सुनाऊँगा कि किस प्रकार विक्रमपुर के ठाकुर रामसिंह अपने अत्यन्त दुःखों के कारण वैरागी होकर और श्री प्रेमचन्द प्रकृति के उपासक तथा नास्तिक अपनी जिज्ञासु रुचि के कारण सत्य की खोज करते हुये ज्ञान प्राप्त करके अपने उद्देश्य में सफल हुये।

यात्री ने पंडित जी को धन्यवाद दिया और भोजन से निवृत्त होकर शिवालय की ओर प्रस्थान किया। पंडित जी ने आसन दिया और सावधानी से सुनने के लिये कह कर अपनी कथा इस प्रकार आरम्भ की।

ओ३म्

रियासत इन्दौर में गांव विक्रमपुर के ठाकुर रामसिंह मध्य-प्रदेश के गण्यमान्य जागीरदारों में से थे। रथ, ऊंट, गाय, घोड़े,

बैल, चौपाल, भव्य-भवन, नौकर-चाकर सभी थे, परन्तु वे और उनकी धर्मपत्नी ठकुरानी जी सदैव शोकातुर और उदास रहते थे। इसका कारण यही था कि उनका कोई उत्तराधिकारी नहीं था। गाँव के समीप एक शिवालय उनके पुरखाओं ने बनवाया था। ठाकुर साहब सायं और प्रातः पूजापाठ को जाया करते थे। कभी कोई साधु सन्त वहाँ आ निकलता तो उसका भोजनादि का प्रबन्ध रियासत की ओर से पुजारी जी कर दिया करते थे। पुजारी जी कोई अधिक विद्वान नहीं थे, परन्तु वे ईश्वर-भक्त थे। एक दिन एक साधु आ निकला। सदैव की भाँति उसके भोजनादि का प्रबन्ध किया गया। शाम को ठाकुर साहब से भी भेंट हुई। ठाकुर साहब ने उससे पूछा कि उसको कोई कष्ट तो नहीं है। साधु ने उत्तर दिया "कृपा है ठाकुर साहब जहां आप जैसे सज्जन पुरुष हों वहाँ किसी को क्या कष्ट हो सकता है। फिर दुःख सुख तो मन का विषय है। आत्मा तो असंग है।"

ठाकुर साहब : मैं तो संसारी जीव हूँ। मेरे पास सब कुछ मौजूद है, फिर भी मेरी धर्मपत्नी उदास रहती है। इस ससार में वैसे तो सभी किसी न किसी कारण मे दुःखी रहते हैं। मुझे तो यही दुःख है कि मेरे घर का दीपक नहीं है जो घर को प्रकाशित करे।

साधु जी : निस्संदेह ठाकुर साहब, स्त्री के भाव ही ईश्वर ने ऐसे बनाये हैं कि उसको ससार की कोई भी दौलत इतनी तसल्ली नहीं देती जितना कि उसके पेट से निकला हुआ बच्चा। मां कितने ही दुःख सहती है, अपने जीवन को सकट में डालती है, परन्तु जब वह अपने बच्चे को गोद में लेकर दूध पिलाती है तो उसकी छाती उमड़ जाती है और अपने को स्वर्गलोक की स्वामिनी समझती है। पर यह सब मिथ्या है, स्वप्नमात्र है।

ठाकुर साहब : फिर वास्तविकता क्या है ? क्या आप बताने की कृपा करेंगे ?

साधु जी : देखो बेटा, वेदान्त यह बताता है कि ब्रह्म सत्य है और शेष स्वप्नवत् मिथ्या है। वेदान्त की पुस्तकें पढ़ो। तुमको मालूम हो जायगा कि केवल तुम ही तुम हो और कुछ भी नहीं है।

ठाकुर साहब : जो आज्ञा, ऐसा ही करूँगा। परन्तु इस समय तो मेरी धर्मपत्नी के कष्ट निवारण करने का कोई उपाय बताने की कृपा करें। साधु लोगों को बहुत सी जड़ी बूँटी तथा औषधियों का ज्ञान होता है और सुनता हूँ, उनके आशीर्वाद में भी शक्ति होती है।

साधु जी : हमारा आशीर्वाद तो प्राणीमात्र के कल्याणार्थ रहता ही है। हमको एक जड़ी मालूम है जंगल से लाकर पुजारी जी को दे जाऊँगा। उसका प्रयोग करना भगवान की कृपा होगी तो अवश्य इच्छा पूरी होगी, परन्तु फिर भी हमारा यही कहना है कि यह प्रपंच मिथ्या है और अब तो धर्मपत्नी का ही कष्ट सहन करना पड़ रहा है फिर संतान का भी कष्ट सहन करना पड़ेगा।

साधु जी एक जड़ी जंगल से तलाश करके और पुजारी जी को देकर चले गये। ठाकुर साहब ने जड़ी का प्रयोग कराया और अनाशा आशा में परिवर्तित हुई। समय आने पर भगवान की कृपा से एक पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ। उसका नाम कंवर चन्द्रसिंह रक्खा गया। इनाम इकराम बाँटे गये, भोज दिया गया और बड़े होने पर शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। यहाँ तक कि उसने बी० ए० की डिग्री प्राप्त करली। इधर ठाकुर साहब के मन पर साधु जी के शब्द हमेशा चुभते रहे कि औलाद का भी दुःख सहना होगा। संसार मिथ्या है, दुःख सुख मन का धर्म है। साधु के कथनानुसार उन्होने वेदान्त का पुस्तकों का अध्ययन भी आरम्भ कर दिया। घर पर एक पुस्तकालय वेदान्त ग्रन्थों का बन गया और पढ़ते-पढ़ते वे स्वय को ब्रह्म समझने लगे।

संसार की कामनाएँ

बड़ी चौपाल के आगे शामियाने लगे हुए हैं। फर्श बिछा जा रहा है। कालीन, सोफे, कुर्सियाँ आदि लगायी जा रही है अंग्रेजी बाजा बज रहा है। गैस के हंडों से रात्री दिन में प वर्तित हो गई है। मालूम होता है कि कँवर चन्द्रसिंह जो ब आशाओं के बाद घर का दीपक बने थे उनके विवाह का भो है। सरकारी अधिकारी दूर दूर से पधारे हैं। ठाकुर साह अपने महमानों की आवभगत मे सलग्न हैं और फूले नहीं सम रहे हैं। कवर साहब के मित्र कृष्ण कुमार और प्रेमचन्द कालि से आये हुए हैं और एक कमरे मे आपस में मनोरजन कर रहे हैं

कृष्ण कुमार : कुँवर साहब आप बड़े भाग्यशाली हैं। माता पित जीवित हैं, धन की कुछ कमी नहीं है। ईश्वर का दिया हुआ स कुछ है। शादी से बढ़कर कब कोई वक्त आवेगा, लो यह त खाली हो गई अब तो दूसरी खोलनी पड़ेगी।

कुँवर साहब : (नौकर से) मंगू दूसरी बोतल ले आओ। अभी त ग्यारह ही बजे हैं।

प्रेमचन्द : (जोकि तर्क शास्त्र का विद्यार्थी है) : धन्य हो डारविन साहब, अच्छी आपने इन पुराने ढोंगियों से छुट्टी दिलवाई। ईश्वर है, भगवान है, नरक है, स्वर्ग है, पुण्य है, पाप है। अरे भाइयो, खाओ, पियो और दुनियाँ में मौज उड़ा कर चले जाओ। न कभी पहले जन्म था और न कभी आगे ही जन्म होगा। प्रकृति ही सब काम कर रही है।

साक़िया[1] ऐसी पिलादे कि महकते जायें।
हम वह कमजर्फ़ नहीं हैं जो बहकते जायें॥

([1] शराब पिलाने वाला)

कृष्ण कुमार : तेरा तो कालिज में तर्कशास्त्र पढ़ते-पढ़ते दिमा
ख़राब हो गया। अबे, यहाँ डारविन थ्यौरी बयान करने का वय
अवसर, (गिलास हाथ में देकर) ले थाम।

कँवर साहब : हाँ हाँ ऐसी पियो कि जमीन आसमान बन जा
और आसमान जमीन हो जाय।

प्रेमचन्द : देखिये कँवर साहब, तुमको मालूम है मैंने तर्कशा
पढ़ा है। जमीन आसमान कैसे बन जायेगी ?

कँवर साहब : फिर वही तर्कशास्त्र का जिक्र। तुझे कोई इन बात
का रोग है।

बारह बजे का समय आ गया है। ठाकुर साहब अप
दावत समाप्त करके इधर होकर निकले। कुछ गुल गपा
सुनकर ठहर गये। कमरे में जाकर देखा कि शराब का दौर च
रहा है। पर मेहमानों की सेवादारी को दृष्टि मे रखकर शिष्टाचा
वश चुप हो गये। तीनों लड़कों ने नमस्ते कहा। प्रेमचन्द बोला-

प्रेमचन्द : ठाकुर साहब, हम तो एक शराबियों का ड्रामा सम
बिताने के लिये खेल रहे हैं। विवाह के अवसर पर ही कुछ मन
रंजन का मौका मिला करता है।

ठाकुर साहब : अब कुछ समय अधिक हो गया है। सवेरे बर
जानी है। अब आराम करो और यह तमाशा समाप्त करो।

प्रेमचन्द : निस्संदेह यह सांसारिक क्रीड़ा है। हम अभी समा
किये देते हैं।

ठाकुर साहब : दुनियाँ क्रीड़ा जरूर है पर यह तमाशा नहीं
तुम खेल रहे हो। फिर कभी बतायेंगे।

यह कहकर कँवर साहब को आदेश दिया कि उनके सोने
प्रबन्ध करें और अपने आराम कमरे में चले गये। बाद में ती
लड़के निद्रा से तो नहीं पर नशे से बेहोश होकर सो गये।

जड़ और चेतन

ढोलकी बज रही थी। स्त्रियों ने गाने बजाने से घर सिर ।
ठा रक्खा था। नई दुलहन को देखने के लिये अड़ौसन पड़ौसन स
। रही थीं। ठकुरानी जी आवभगत में संलग्न थीं। पर ठाकु
ाहब का मस्तिष्क दूसरी ओर ही लगा हुआ था। नये अतिथिय
। शोर-गुल, कँवर साहब की लापरवाही, शराब का दौर सवे
नाश्ते के साथ भी चल रहा था। ठाकुर साहब ने ख्याल किय
नहो औलाद का दुःख भी सहना होगा" और मन्दिर की ओ
। गये। पुजारी ने आसन दिया और ठाकुर साहब को विशे
न्ता में देखकर बोला।

ारी : ठाकुर साहब, आज चेहरे पर कैसे चिन्ता के चिह्न हैं?
ुर साहब : अजीब परेशानी में हूँ, पुजारी जी। बड़ी आशाओं
बाद भगवान ने एक बच्चा दिया, पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया
। देखो, हर दम नशा, हरदम शराब। कालिज में पढकर
ष्यता से बाहर हो गया है। सुना है कुछ संगति भी खराब हो
है। एक ओर तो ये बातें मुझे सता रही हैं दूसरी ओर वेदांत
पुस्तकों को देखता हूँ तो यह सब मिथ्या ही बतलाया गया
फिर यह दुःख सुख कौन भोगता है। कहते हैं यह मन का
ाय है। मन तो जड़ है। क्या चेतन के बजाय जड़ को भी सुख
। अनुभव हुआ करते हैं। कुछ समझ में नहीं आता।

ारी : आपने जब से भक्ति मार्ग से अपना ध्यान हटा करके
ान्त की ओर मुख किया है तब से आपकी दशा कुछ अजीब
ी चली जा रही है। कलियुग में तो भक्ति मार्ग ही एक ऐसा
ग्न है जिससे मनुष्य-मात्र का कल्याण होता है।

ुर साहब : सचमुच, स्वामी जी के उपदेश ने भ्रम पदा कर

दिया है। बहुत कुछ दुःख को दुःख न समझने की कोशि
करता हूँ और इस भ्रम जाल से अलग होने का प्रयत्न करता
परन्तु दुःख होता ही है। समझ में नहीं आता कि यह दुःख
को होता है या चेतन को।

पुजारी : आप तो ईश्वर के चतुर्भुजी स्वरूप का ध्यान कर
आरम्भ करें। जड़ और चेतन का तो झंझट है। इसमें आप
पड़ने की आवश्यकता ही क्या है।

ठाकुर साहब : पुजारी जी, चतुर्भुजी स्वरूप का ध्यान तो
चक्षु के द्वारा इन्द्रिय होता है। ये सब पाँचों ज्ञान इन्द्रियाँ
पंच महाभूत के गुण शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध को ही भो
हैं। तो यह चतुर्भुजी स्वरूप का ध्यान करना तो इन्द्रियों का वि
रहा। ईश्वर तो नाम रूप से अतीत है। जब ईश्वर इन्द्रियों
विषय नहीं तो मुझको चतुर्भुजी स्वरूप का ध्यान करने का आ
क्यों करते हो। श्रुतियों में ईश्वर को निराकार, नित्य, शुद्ध,
एवं सर्वव्यापक बताया गया है और वह तो अजन्मा, अमर,
नाड़ियों के बन्धन से अलग है। यह समझ में नहीं आता।

पुजारी : ठाकुर साहब, इनका दर्शन तो ऋषि मुनियों को
दुर्लभ है। आप इसे विषय बतलाते हैं। ईश्वर का शरी
अप्राकृतिक होता है। वह अपने भक्तों को तारने के लिये जन्म
लेते हैं।

ठाकुर साहब : मेरी समझ में नहीं आता। अगर ईश्वर का श
अप्राकृतिक होता है तो वह विवाह करके सन्तानोत्पत्ति कैसे क
है? और जब यह शरीर खाता पीता है तो उसमें मल,
गन्दगी सभी भरी रहती है। भगवान तो सच्चिदानन्द स
है और यह शरीर नाशवान है। इस नाशवान शरीर का
करने से अनन्त शरीर कैसे मिल सकता है।

ठाकुर साहब और पुजारी जी ये बातें कर ही रहे थे कि कँवर साहब, कृष्ण कुमार और प्रेमचन्द मन्दिर की तरफ आ निकले। ठाकुर साहब ने सोचा 'यह लड़के कैसे माया के जाल में फँसे हुए हैं। शराब के दौर, भौतिकवाद में लगे हुए हैं। आओ, इनको कुछ उपदेशही करें।" ठाकुर साहब बीस वर्ष से वेदान्त का अध्ययन करते-करते एक चेतन के मानने वाले बन गये थे। इसके विपरीत प्रेमचन्द कालिज की शिक्षा के कारण पूर्णरूप से अनात्म-वादी था। वह केवल प्रकृति का ही पुजारी था। तर्क में उसका अभ्यास बढ़ा हुआ था। विद्वत्ता में अपना प्रतिद्वन्दी नहीं रखता था। ठाकुर साहब और प्रेमचन्द दोनों ही अपने अपने सिद्धांतों पर पूर्ण आस्था रखते थे। दोनों में बातचीत इस प्रकार आरम्भ हुई

ठाकुर साहब : नवयुवको, तुम लोग क्यों माया के जाल में पड़े हुए हो और क्यों अपनी बुद्धि इस प्रकार खराब कर रहे हो ?

प्रेमचन्द : माया जाल क्या होता है, ठाकुर साहब ?

ठाकुर साहब : माया ईश्वर की वह शक्ति है जो ईश्वर से निकल कर एक जाल फैलाती है। जो स्वप्न के देखे हुए पदार्थ की भाँति अपना कोई अस्तित्व नहीं रखती। न उसको 'नहीं" कह सकते हैं और न उसको "है" ही कह सकते हैं। जैसे स्वप्न में सब कुछ दिखलाई देता है, परन्तु होता कुछ भी नहीं है। ईश्वर एक समुद्र की भाँति है जिसमें से तरगें उठ उठ कर बुलबुले पैदा हो जाते हैं और ये समस्त जीव बुलबुलों की भाँति हैं जिन पर माया के जाल का परदा पड़ जाता है। और ये जीव स्वयं को "मैं' और" तू" कहने लगते हैं। ये जीव रूपी बुलबुले समुद्र रूपी ब्रह्म से अपने को पृथक् समझने लगते हैं। ये सब माया जाल में फस कर निज के अस्तित्व को भूल गये हैं और यह समझने पर कि समुद्र बुलबुले से अलग कोई वस्तु नहीं है माया जाल से अलग हो जाते हैं। जैसे

एक छोटे से स्वप्न से जागकर मनुष्य समझता है कि वह जो कुछ भी देख रहा था मिथ्या था। इस प्रकार जीवन में इस बड़े स्वप्न से ज्ञान प्राप्त कर जब जाग्रत हो जायगा तो यह संसार मिथ्या प्रतीत होगा। केवल एक ब्रह्म ही सत्य रह जायगा। शेप सब मिथ्या

प्रेमचन्द : यह सत्य स्वरूप ब्रह्म क्या चीज है ?

ठाकुर साहब : वह नाम रूप से परे है। नित्य, मुक्त, शुद्ध, चेतन स्वरूप है।

प्रेमचन्द : तो फिर उस चेतन, मुक्त शुद्ध स्वरूप से जो वस्तु बनेगी या उससे निकलेगी वह उसी के गुण वाली होगी फिर यह जड़ पदार्थ सारा ससार जो प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है कहाँ से आ गया? आप प्रत्यक्ष को न मानकर ऐसी वस्तु का वर्णन कर रहे हैं जिनके अस्तित्व का कोई प्रमाण नहीं है।

ठाकुर साहब : भाई तर्क से न कोई बात कभी सिद्ध हुई, न हो सकती है। वह तो गूँगे के लिये गुड़ के समान है। केवल अनुभव करने की बात है। जब ज्ञान का प्रकाश हो जायेगा और वास्तविकता मालूम हो जायेगी तब एक ब्रह्म ही ब्रह्म रह जायेगा।

प्रेमचन्द : यदि आप तर्क को नहीं मानते तो मेरा सिद्धान्त सुनिये जो सब पर प्रगट हो रहा है। हम, आप और समस्त विश्व में जो प्रगट हो रहा है वह प्रकृति ही प्रकृति है। जैसे ब्रह्म से माया निकल कर परदा डालती है और वह ब्रह्म के गुणों से विपरीत गुण वाली जड़ वस्तु को पैदा करती है वैसे ही मैं कहता हूँ कि प्रकृति से ही चेतन वस्तु पैदा होती है और जीवन-काल में "मैं" "तू" कहने लगती है। मृत्यु के पश्चात् उसी में मिल जाती है मेरी बात की पुष्टि संसार में हरएक वस्तु से हो रही है। परन्तु आपके सिद्धान्त के पक्ष में कोई प्रमाण दिखाई नहीं देता।

ठाकुर साहब : जड़ वस्तु तो अंधी है, ज्ञान शून्य है। उससे ज्ञान

वाली वस्तु कैसे उत्पन्न हो सकती है। सोने से सोना और चाँदी से चाँदी ही बनती है।

प्रेमचन्द : तो चेतन से चेतन ही उत्पन्न हो सकता है। फिर यह माया जो जड़ है कहाँ से पैदा हो सकती है। यदि आप इस माया को अनिवर्चनीय, सत्य असत्य से पृथक स्वप्नवत् मानते हैं तो मैं भी प्रकृति से उत्पन्न हुई चेतन शक्ति को स्वप्नवत् ही मानता हूँ। जीवन शक्ति प्रकृति से ही पैदा होती है और प्रकृति में ही मिल जाती है। फिर आपने तर्क से तर्क का खन्डन क्यों किया। जब आप तर्क को मानते ही नहीं हैं।

ठाकुर साहब : (कुछ मन में क्षुब्ध होकर) : अभी तुम बच्चे हो। इस प्रकार की बात कहना ठीक नहीं है। सारे सन्तों का यही सिद्धान्त रहा है। तुमको अभी और पढ़ने तथा अभ्यास की आवश्यकता है। ये बातें ऐसी हैं जहाँ बुद्धि की पहुंच नहीं है।

प्रेमचन्द : तभी तो ये बातें तर्क नहीं सहन कर सकतीं। ये समस्त विश्व प्रकृति से ही उत्पन्न होता है और उसी में विलय हो जाता है और चेतन शक्ति स्वप्नवत् होती है।

ठाकुर साहब कुछ चुप से होकर घर जाने को तैयार हुए। प्रेमचन्द और भी कुछ कहने वाला था परन्तु ठाकुर साहब के यह कहने पर कि भोजन का समय हो गया है चल पड़े। इस प्रकार जड़ और चेतन की बात अधूरी ही रह गई।

बन्धन

अतिथि रात्रि का भोजन कर चुके थे और दिन भर की थकान के बाद आराम करने के लिये अपने-अपने बिस्तर खोल रहे थे। कोई सोने को तैयार था तो कोई बिस्तर बिछा रहा था। इतने ही में शोर-गुल सुनाई दिया और बन्दूकों के धमाके

सुनाई दिये। लोग इधर-उधर को भागने की फिक्र करने लगे। "हे भगवान्", "हे भगवान्" का शब्द सुनाई देने लगा। सबका ध्यान उसी ओर आकर्षित हो गया कि क्या आपत्ति आई। कहीं डाकू लोग तो नहीं आ गये। इतने ही में कुछ हिंसक मनुष्य मुँह पर कपड़ा लपेटे वहाँ पहुंचे जहाँ ठाकुर साहब परेशानी की हालत में खड़े हुए थे और उनमें से एक जो उनका सरदार मालूम होता था इस प्रकार बोला—"निकाल दो अपनी तमाम उम्र की जुल्म की कमाई हुई दौलत। सन्दूक कहाँ है ? चाबियाँ कहाँ हैं ?

ठाकुर साहब : आप लोग क्या चाहते हैं। जान या माल ?

सरदार : हम और कुछ नहीं चाहते। केवल जेवर, रुपया, पैसा जल्दी दीजिये।

ठाकुर साहब : जेवर सब आपके सामने रखता हूँ मगर रुपया तो बैंक में है। जो कुछ घर में था वह शादी में लग गया।

सरदार : आजकल तो सभी लोग रुपया बैंक में रखते हैं मगर हमको यह भी मालूम है कि बैंक से रुपया किस तरह निकलवाया जा सकता है।

ठाकुर साहब ने सब जेवर उतरवा कर सरदार के हवाले किये। सरदार ने अपने एक साथी को आदेश दिया कि इनको मजबूती के साथ बाँध लो। जब यह दस हजार रुपया पहुंचा दें तब इनको छोड़ दिया जायेगा।

ठाकुर साहब : मेरा तो बैंक में दस हजार रुपया है भी नहीं।

सरदार : कितना है ?

ठाकुर साहब : सिर्फ पाँच हजार रुपया है।

सरदार : अच्छा पाँच हजार रुपया बैंक से और पाँच हजार रुपया अपनी जायदाद बेचकर देना होगा।

प्रेमचन्द इस दृश्य को ध्यानपूर्वक देख रहे थे। इन सब बातों को सुन रहे थे। उनसे चुप नहीं रहा गया और कहने लगे "उफ़ इतना जुल्म, क्या इन्सानियत बिल्कुल नहीं है?" सरदार ने अपनी पिस्तौल का मुँह प्रेमचन्द की ओर को मोड़ा और दूसरे साथी से कहा–"इसको भी बाँध लो। आया है हिमायती बनकर। ठाकुर साहब के बदले में पाँच हजार रुपये यह देगा।"

डाकुओं ने ठाकुर साहब और प्रेमचन्द दोनों को बाँध लिया और आगे करके जंगल की ओर चल दिये। थोड़ी ही देर बाद पैरों की आहट सुनाई दी। कुँवर साहब ने अपने कुछ साथियों को लेकर डाकुओ का पीछा किया। हर चन्द कोशिश की कि दोनों को छुड़ा लें मगर कोई बात कारगर न हुई। भला कुँवर साहब को ऐसे मौके कब पेश आये थे। सरदार अपना बचाव करता हुआ, साथ ही फायर करता हुआ जंगल की ओर भागता जाता था। एक गोली सरदार की पिस्तौल से कुँवर साहब की जाँघ में लगी और वह गिर गये। साथी लोग उन्हें उठाकर घर ले गये। डाकू ठाकुर साहब और प्रेमचन्द को पिस्तौल की आड़ में लिए हुए जंगल के अँधेरे में दूर निकल गये।

वापसी

अंधेरी रात थी। एक पेड़ के नीचे दो भले आदमी खर्राटे की नींद ले रहे थे। पास ही एक आदमी बन्दूक लिये टहल रहा है। कुछ ही देर में घोड़ों की टापों की आवाज सुनाई दी और लोग घोड़ों से उतर-उतर कर कुछ माल सुरक्षा के साथ एक कोठरी में जो पास ही बनी हुई थी रखने को जाने लगे। उनमें से एक ने पहरेदार से कान में पूछा कि क्या खबर है। पहरेदार ने उत्तर दिया अभी कुछ नहीं। विक्रमपुर से कोई आदमी इधर

[भी तक नहीं आया। दूसरे लोग कोठरी में जाकर आराम करने लगे। आज फिर डाकू कहीं डाका डालकर आये थे औ माल आपस में बाँट रहे थे। दिन निकला, पहरेदार ने गोंगे के तीनों आदमियों को जगाया और नित्य कर्म से निवृत्त होने को कहा। थोड़ी देर बाद डाकुओं का सरदार आया और ठाकुर साहब से बोला।

सरदार : कहिये ठाकुर साहब, आपके घर वालों ने आपको कोई खबर नहीं ली ?

ठाकुर साहब : खबर कहाँ से लेते। उनको हमारा पता ही न मालूम है जहाँ रुपया भेजते।

सरदार : ओह ठीक है। फुरसत ही न मिली जो इस बात का ध्यान रखते। आज आप एक पत्ते पर यह लिखकर भेज दो कि होशिंगाबाद के उत्तर में नर्वदा के किनारे एक सन्यासी कुटी है उसके तीन ओर वन है। उस कुटी के दक्षिण की ओर रुपया पहुंचा दिया जाय। हमारा एक आदमी वहाँ मिलेगा।

सरदार ने एक डाकू को एक लिफाफा होशिंगाबाद से (जाने) का आदेश दिया और एक घन्टे बाद ही डाकू लिफाफा लेकर पहुंचा। उसके साथ एक औरत और एक सुन्दर लड़की थी। औरत ने हाथ जोड़कर सरदार को नमस्ते की। लड़की ने (चारों) तरफ दृष्टि फेंकी तो प्रेमचन्द पर नजर गई। जिसको उसने (पहले) नहीं देखा था। प्रेमचन्द सुन्दर नवयुवक था, चरित्र का भी (अच्छा) था, ब्रह्मचर्य का तेज उसके मुख पर दीख रहा था। लड़की नवयुवती थी। युवावस्था के चिन्ह उसके शरीर में प्रकट हो (रहे) थे। वह प्रेमचन्द को ध्यान से देखने लगी। प्रेमचन्द की (आँखें) नीची हो गई और लड़की के मन में घर कर गई। वह

पिता सरदार से कहने लगी—"पिता जी ये लोग कौन हैं ? क्या ये हमारे गिरोह में नये भर्ती हुए हैं ?"

सरदार : नहीं, नहीं, यह लोग हमारे कर्जदार हैं। इन्होंने कर्ज चुकाने के लिये अपने घर चिट्ठी भेजी है।

ठाकुर साहब : यह आपकी पुत्री मालूम होती है।

सरदार : हाँ ठाकुर साहब, इसी की शादी के लिये मैंने आप लोगों को कष्ट दे रक्खा है।

लड़की सीधी थी और अपने पिता के पापों की जिन्दगी उसे पसन्द न थी। उसने यह नहीं समझा कि उसके पिता ने उनका घर लूट कर उन्हें कैद कर रक्खा है। बल्कि उसके भाव उमड़ने लगे और सोचने लगी शायद उसके पिता उसकी शादी का प्रबन्ध कर रहे हैं और यह नवयुवक उन्होंने उसकी शादी के लिये पसन्द किया हुआ है। वह प्रेमचन्द को बहुत उत्सुकता से देखती रही और प्रेमचन्द की शर्मीली आँखें उस पर जादू का प्रभाव डालने लगीं।

इतने में एक आदमी खाना ले आया जिसे सरदार की धर्मपत्नी घर से तैयार करके लाई थी। लड़की ने सरदार के सन्मुख जब खाना रखा देखा तो कहने लगी कि "पिता जी, आपने इन अतिथियों के भी भोजन का प्रबन्ध किया है ?" सरदार ने कहा—"बेटी, आज हमारी तबियत खराब है, कुछ ज्वर भी मालूम होता है। आज भोजन नहीं करेंगे। यह सब इन दोनों को ही दे दो। लड़की ने प्रेमचन्द के सन्मुख भोजन लाकर रख दिया। उन दोनों ने अपने पेट की आग बुझाई।

सरदार पुलिस के भय से कभी शहर में नहीं जाता था। जब उसको फुरसत मिलती तो उस कोठरी में आकर ठहरता और उसकी धर्मपत्नी भी उससे मिल जाया करती। स्त्री ने शाम होने

घर घर जाने की अनुमति चाही। सरदार को ज्वर काफी चढ़ चुका था। स्त्री को अनुमति देदी और लड़की को अपने पास ही ठहरने को कहा। डाकू लोगों के पास लूट का माल काफी जमा हो चुका था। उन्होंने सरदार से दो चार दिन का अवकाश लेकर घर जाने की अनुमति माँगी, जिससे वे अपना माल लेकर घर चले जायें। सरदार ने डाकुओं को घर जाने के लिये बेचैन देख कर कह दिया कि अभी दो-चार दिन कहीं जाने का विचार नहीं रखते। जब तबियत ठीक हो जायेगी तब कहीं जावेंगे। चार-पाँच दिन के बाद लौटकर वापिस आ जाना और एक डाकू को ठाकुर साहब और प्रेमचन्द का पहरा लगाने के लिये रख लिया। डाकू लोग अपने-अपने घरों को चले गये और पहरेदार ने पहरा लगाना शुरू कर दिया।

सबेरे के चार बजे तक सरदार का ज्वर १०५ डिग्री तक चढ़ गया। वह पानी-पानी चिल्ला रहा था। लड़की ने तमाम घड़ा खाली कर दिया। इधर प्रेमचन्द और ठाकुर साहब की भी आँखें खुल चुकी थीं। शौच इत्यादि से निवृत्त होने के लिये पहरेदार से कहा। पहरेदार अलग हो गया।

प्रेमचन्द ने हालात पर विचार किया और ठाकुर साहब के कान में कुछ कह दिया और वे दोनों पहरेदार से वार्तालाप करने में व्यस्त हो गये।

ठाकुर साहब : कहो भाई, यह पानी-पानी कौन चिल्ला रहा है।
डाकू : हमारे सरदार साहब का ज्वर तीव्र हो गया है।
प्रेमचन्द : यदि आज्ञा हो तो हम भी सरदार साहब को देख आवें शायद हम कुछ सहायता कर सकें।

डाकू : कुछ हर्ज नहीं, आप लोग मेरे साथ कोठरी में चल सकते हैं

तीनों व्यक्तियों ने कोठरी में प्रवेश किया। लड़की जिसक

नाम गोपी था बराबर पानी पिला रही थी। अब लोटे का पानी समाप्त हो चुका तो लड़की ने डाकू से पानी लाने को कहा
प्रेमचन्द : अगर जगह बता दो कि पानी कहाँ मिलेगा तो पानी ले आऊँगा।
डाकू : तुम लोगों को पानी मिलना कठिन है। मैं नर्वदा में अभी भरकर लाता हूँ। तुम यहीं रहना।

डाकू ने घड़ा उठाया और नर्वदा की ओर चल दिया। व कुछ दूर ही जाने पाया था कि प्रेमचन्द ने संकेत किया। ठाकु साहब ने पिस्तौल जो वहाँ रक्खी हुई थी उठा ली और प्रेमचन ने सरदार का गला दबा दिया। सरदार की लड़की गोपी ने शो मचाना शुरू किया मगर वहाँ उसकी सुनने वाला कौन था सरदार को मारकर प्रेमचन्द ने जो भी जेवर नकदी वहाँ थी एव कपड़े में बाँध ली। गोपी सोचने लगी कि यह कैसे मेरे पिता के कर्जदार थे और मेरी शादी करने का जिक्र कैसे किया था प्रेमचन्द की ओर उसके प्रेम-भाव काम कर रहे थे और वह अपने पित की जुल्म की कमाई से बहुत बेचैन रहती थी। उसकी आँखों में अधकार छाया हुआ था। फिर सोचने लगी कि न मालूम मेरी माता को क्या ख्याल होगा जो मेरी उपस्थिति में मेरे पिता का वध हो गया। न मालूम क्या क्या संदेह मेरे प्रति किये जावेंगे। उसको कुछ न सूझा। बस प्रेमचन्द के पैरों में गिर गई और कहने लगी कि मेरी खैर इसी में है कि आप मुझको भी कत्ल कर दें। प्रेमचन्द प्रकृति का पुजारी जरूर था परन्तु उसका चरित्र बहुत ऊँचा था। उसने सोचा इसका कत्ल करना जंगलीपन होगा। उसको कत्ल करने से इन्कार कर दिया, परन्तु उसके कहने सुनने पर उसको अपने साथ ले चलने पर तैयार हो गया। ठाकुर साहब ने भी उसे यकीन दिला दिया कि गांव में उसकी किसी अच्छे घर से शादी कर देंगे।

ठाकुर साहब ने भरा हुआ पिस्तौल आगे कर लिया और वहाँ से जाने वाले ही थे कि डाकू पानी का घड़ा लेकर आ गया ठाकुर साहब ने पिस्तौल के दो फायर किये और वह डाकू भी परलोक सिधार गया। प्रेमचन्द ने सहारा लगाया और दोनों मिलकर उसे नर्वदा नदी के हवाले किया। तीनों प्राणी अंधेरे में अदृश्य हो गये।

सन्यासी से भेंट

नर्वदा के जंगल में तीन प्राणी भ्रमण कर रहे हैं। पैर कांटों से घायल हो चुके हैं मगर यह जीवन मनुष्य को बड़ा प्यारा है बराबर बढ़ते ही चले जाते हैं कि कोई व्यक्ति उनको उस कुटी का पता बता दे जो होशिंगाबाद के उत्तर में नर्वदा के किनारे पर और जिसमें एक सन्यासी का रहना बताया जाता है।

सम्भवत कोई व्यक्ति ठाकुर साहब के पत्र के उत्तर में उन्होंने विक्रमपुर को रुपया मंगाने के लिये भेजा था वहाँ जावे। तलाश करते-करते पगडण्डी मिल गई। उन्होंने सोचा अवश्य ही यह कोई मनुष्यों के आने-जाने की राह है। तीनों वह राह पकड़ ली। थोडी देर में एक वृद्ध सिर पर गठरी रखे उधर से जाता दिखाई दिया।

"वृद्ध तुम कहाँ जा रहे हो" प्रेमचन्द ने पुकार कर पूछा।

"मैं होशिंगाबाद से आ रहा हूँ और अपने गाँव जा रहा" वृद्ध ने उत्तर दिया।

प्रेमचन्द : बाबा तुम्हें मालूम है कि यहां नदी के तट पर कि सन्यासी की कुटी है।

वृद्ध : हाँ मालूम है। वहाँ बहुत बड़े साधु और योगी हैं।

प्रेमचन्द ने पूरा पता मालूम किया और वृद्ध ने कुटिया

ओर संकेत करके बता दिया जो वहाँ से लगभग एक मील थी तीनों ने उधर का रुख लिया और अन्त में वहाँ पहुँचकर देखा कि सन्यासी जी अपनी उपासना में संलग्न हैं। दिन निकल आया था तीनों बेहद थके हुए थे। एक ओर आराम करने के लिये बैठ गये। सन्यासी जी अपनी उपासना से निवृत्त होकर कुटी से बाहर निकले। इन तीनों आगुन्तकों पर उनकी दृष्टि पड़ी। उनसे पूछा-

सन्यासी : आप कौन लोग है। जंगल में यहाँ कैसे बैठे हैं?

ठाकुर साहब : बाबा जी, हम बड़ी आपत्ति के सताये हुए हैं हमारा सब धन डाकुओं ने लूट लिया और हमको बाँधकर डाकुओं का सरदार इधर ले आया। (और सब हाल डाकुओं के कत्ल का सुनाते-सुनाते आँखों में आँसू आ गये।)

सन्यासी : भाई सन्तोष करो। इस संसार में सुख कम है, दुःख अधिक है। मगर सुख-दुःख अपने ही कर्मों का फल होता है। भगवान पर भरोसा रक्खो। वे ही तुम्हारा कल्याण करेंगे।

प्रेमचन्द को तो ईश्वर के नाम से ही चिढ़ थी। कहने लगा "दुःख-सुख दोनों ही सामयिक हैं। ईश्वर क्या होता है?"

सन्यासी : ओ हो, तुमने तो अंग्रेजी ज्यादा पढ़ी मालूम होती है। क्या तुम भगवान को नहीं मानते?

ठाकुर साहब : हाँ महाराज यह तो यही कहते हैं कि ईश्वर कोई चीज़ ही नहीं है। प्रकृति ही काम कर रही है। उसी से चेतन शक्ति पैदा होती है।

प्रेमचन्द : और यह ठाकुर साहब कहते हैं कि प्रकृति कोई चीज़ नहीं। केवल एक चेतन शक्ति ही काम कर रही है। उसी से माया अर्थात् प्रकृति जो दिखाई दे रही है पैदा होकर स्वप्नवत जाल बिछा रही है।

सन्यासी : फिर बुद्धि द्वारा किये काम जो दुनिया में दिखाई देते है वह कौन करता है ?
प्रेमचन्द : जैसे शराब में नशा पैदा होता है ऐसे ही प्रकृति (नेचर) से पहिले पानी में जीवन शक्ति पैदा होती है और फिर वह विकसित होकर सब जीवों का रूप धारण कर लेती है।
सन्यासी : क्या द्रव्य में जो तुम हरकत मानते हो जिससे यह समस्त विश्व बन जाता है, इस द्रव्य की असलियत की भी तुमको खबर है।
प्रेमचन्द : इस द्रव्य की असलियत कुछ गैस हैं जो ऐटम यानी परमाणु के रूप में प्रकट होती हैं और मिलजुल कर यह तमाम विश्व बन जाता है।
सन्यासी : यदि परमाणु से ही जीव की पैदायश मानोगे तो सुसुप्ति की हालत में जाकर फिर जागना असम्भव हो जावेगा क्योंकि एक बार जब वह जीवन शक्ति समाप्त हो गई तो दोबारा, तीसरी बार और चौथी बार फिर बार-बार पैदा होने का कोई कारण नहीं दीखता। दूसरे फुटबाल में से जब हवा निकल जाती है तो दुबारा आप ही नहीं भर जाती। परन्तु जीवों में हम देखते हैं कि हरदम साँस निकलती है और फिर भरती रहती है। इससे कोई चेतन शक्ति की सत्ता अलहदा मालूम होती है। जिसमें तीन क्रिया करना, उलटा करना, न करना पाया जाता है फिर परमाणु जड़ हैं वे आपस में मिलकर विश्व को नहीं बना सकते। क्या तुमने कभी यह सोचा है ?
प्रेमचन्द : क्यों नहीं बना सकते ?
सन्यासी : देखो, परमाणुओं में बुद्धि न होने से वे कोई भी मनमाना काम (अर्थात् करना, न करना, उलटा करने की शक्ति) करने से मजबूर हैं। यदि तुम इन परमाणुओं में मिलने की प्रकृति या स्वभाव मानते हो तो वह तीन प्रकार की हो सकती है। या तो

एक दूसरे से मिलने की या एक दूसरे से पृथक होने की या मिलने और पृथक् होने की दोनों स्वाभाविक शक्तियाँ।

प्रेमचन्द : हाँ ठीक है।

सन्यासी : तो यह तीनों शक्तियाँ विश्व नहीं बना सकतीं। यदि एक दूसरे से मिलने की शक्ति हम परमाणुओं में मानते है तो सब परमाणु एक तरफ से दूसरी तरफ को मिलने के लिये दौड़ेंगे और जो फासला बीच में होगा बराबर बना रहेगा। इस तरह वे मिल ही नहीं सकते। यदि कहो कि उनमें एक दूसरे से मिलने की प्रकृति है तो सब मिल जायेंगे और उनका एक ढेर बन जायेगा। यदि कहो कि उनमें अलग होने की शक्ति है तो सब अलग ही रहेंगे। यदि कहो कि संयोग तथा वियोग दोनों ही शक्तियां ये परमाणु रखते हैं तो मिलते रहेंगे और अलग होते रहेंगे। इस कारण वे कभी नियमित रचना कर ही न सकेंगे।

प्रेमचन्द : फिर उन्हें ईश्वर कैसे मिलता है ?

सन्यासी : ईश्वर चेतन रूप है। वह हरएक परमाणु में व्यापक होकर अपने ज्ञान से एक नियम के रूप में इन परमाणुओं को मिलाता है।

प्रेमचन्द : क्या प्रकृति अर्थात् नेचर यह काम नहीं कर सकती।

सन्यासी : तुम प्रकृति अर्थात् नेचर किसको कहते हो। प्रकृति (नेचर) कोई द्रव्य है या गुण अर्थात् कोई वस्तु है या उसका गुण है। यदि कहो कि प्रकृति (नेचर) कोई वस्तु है तो वह ज्ञानमय है या ज्ञानशून्य। यदि कहो कि प्रकृति (नेचर) ज्ञानमय है तो वह ईश्वर का दूसरा नाम हुआ। यदि कहो कि गुण है तो तुम यह मानते ही हो कि भौतिक वस्तुओं में ज्ञान नहीं है। तो फिर नियमबद्ध रूप में कैसे आयेगा। इसलिये उसको जो इस समस्त विश्व को नियमबद्ध के रूप में लिये हुए है, पृथक् वस्तु माननी होगी जो इन परमाणुओं में व्यापक रहकर अपने ज्ञान के अनुसार इन

परमाणुओं में संयोग-वियोग करती रहती है। इस प्रकृति को जो द्रव्य में नियम पैदा करती है ईश्वर कहते हैं। वह कोई गुण इस प्रकृति का नहीं है। बल्कि वह निराकार रूप में सब जगह सब में व्यापक रहकर असीम है।

प्रेमचन्द : अहा, मैं भी कभी-कभी सोचता हूँ कि कोई वस्तु ऐसी अवश्य है जो इन तमाम वस्तुओं पर नियन्त्रण रखती है। आज-कल तो ईश्वर की यह बात कोई भी नहीं बताता जो आपने बताई है। लोग तो ईश्वर को मनुष्य में बताते हैं। आपने जो ईश्वर की परिभाषा की है उसको न कोई बताता है और न कोई मानता है।

सन्यासी : मनुष्यों के रूप में ईश्वर को मानने का सिद्धान्त वेद शास्त्रों के सिद्धान्त से सर्वथा विपरीत है। यह मत मतान्तरों की बात है। जब वेद शास्त्रों का कोई अध्ययन करता है तो ऐसे सिद्धान्तों की वास्तविकता का पता लग जाता है। क्योंकि आजकल वैदिक दार्शनिकता से लोग सर्वथा अनभिज्ञ हैं और पुराणों की कथाओं को ही धर्म समझते हैं। इसलिये अंग्रेजी पढ़ने वालों की और साइन्स पढ़ने वालों की श्रद्धा धर्म से उठती जा रही है और नास्तिकता का प्रचार बढ़ता जा रहा है।

प्रेमचन्द : वेद क्या हैं और शास्त्र क्या हैं ? हम तो रामायण और महाभारत, भागवत आदि की कथाओं को ही सुनते चले जाते हैं।

सन्यासी : वेद चार हैं और शास्त्र छः हैं और भी प्राचीन ऋषियों की रची हुई पुस्तकें हैं जिनमें सत्य ज्ञान मौजूद है। वेद ईश्वर का ज्ञान है। जो ईश्वर ने सृष्टि रचना के आदि में ऋषि-मुनियों के मन में पैदा किया और बाद में हमारे ऋषियों ने छः शास्त्र-वैदिक फ़िलास्फी पर भिन्न-भिन्न ग्रन्थ रचे ताकि लोगों को वेदों की शिक्षा और ईश्वर, जीव तथा प्रकृति का ज्ञान हो और जीव अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर ले।

प्रेमचन्द : वाह जी वाह, कैसा ईश्वरीय ज्ञान ? जीव, प्रकृति क्या होती हैं ? और उद्देश्य की प्राप्ति कैसी ? क्या यह और कोई इल्म है ? यह बातें तो हमने कभी नहीं सुनीं। क्या स्वर्ग, नरक, देवता, अवतार, पशुओं के बोलने की कथाएँ, पहाड़ों की नाग कन्याओं के विवाह, इनके अतिरिक्त भी कोई आपकी फिलास्फी है।

सन्यासी : मैंने तुमको बतलाया कि विवेक ही से बुद्धि किसी बात के सत्य-असत्य का पता लगाती है। यह कथाएँ तर्क के सामने नहीं ठहरतीं। मत-मतान्तरो के प्रवर्तक तथा उनके अनुयायी अपने मतों के सम्बन्ध में तर्क करने को बुरा समझते हैं। ऐसे ही दूसरे धर्मावलम्बी अपनी पुस्तकों को ठीक समझते हैं जबकि उनमें भी बुद्धि के विरुद्ध ऐसी ही असम्भव बातें पाई जाती हैं। ईश्वर का कोई अपना धर्म नहीं है। उनका उपदेश तो सभी जीवों के लिये एकसा है। जिसको समझने के लिये सूक्ष्म दृष्टि की जरूरत है। अगर तुम जानना चाहते हो कि संसार क्या है तो सिवाय वैदिक फिलास्फी के कोई धर्म या मत इसका उत्तर नहीं दे सकेगा और यदि तुम यहाँ ठहर सको तो मैं तुम्हारी शंकाओं का निवारण करूँगा। परन्तु मैं अपने नित्य कर्म से निवृत्त हो जाऊँ। चाहो तो ठहरो वरना क्षमा चाहता हूँ।

प्रेमचन्द्र : ठाकुर साहब, कहो क्या विचार है ? मेरी तो जिज्ञासा बढ़ती जाती है। यदि आप कहें तो कुछ आराम भी कर लें और कुछ बातें मालूम करके चलें।

ठाकुर साहब : डाकू लोग हमारी तलाश में फिर रहे होंगे और यह सम्भव है कि कोई यहाँ आ निकले और हम फिर फँस जायें। चाहता तो मैं भी हूँ कि यह मालूम करूँ कि जब ब्रह्म आनन्दस्वरूप है और हम उसके अंश हैं तो सुख-दुःख किसको होता है।

प्रेमचन्द : डाकू लोग हमको किसी रेल या स्टेशन पर या किसी शहर में तलाश कर रहे होंगे। यहाँ जंगल में तलाश करने पर उनको क्या मिलेगा। मेरे विचार से इस समय यहाँ से कहीं जाना ठीक नहीं है।

सन्यासी ने उन्हें थोड़ी देर ठहरने को कहा और वह कुटी में चले गये।

भ्रमण की कामना

कई दिन बीत गये। डाक्टर साहब की मोटर जो प्रतिदिन विक्रमपुर की ओर आया करती थी आज इधर नहीं आई। ऐसा प्रतीत होता है कि कुँवर चन्द्रसिंह की टाँग में जो गोली लगी थी वह निकल चुकी है और जख्म अच्छा हो चुका है। मगर ठाकुर साहब और प्रेमचन्द का कोई पता न लगा। बेचारे कहाँ मारे-मारे फिर रहे होंगे और उन पर क्या बीती होगी। सब चिन्तित थे क्योंकि मध्य प्रदेश में इन डाकुओं ने एक मुसीबत ढा रक्खी है।

कुछ आदमी खेत पर बैठे हुए आपस में ठाकुर साहब की बातचीत कर ही रहे थे कि कुँवर साहब के मित्र भगवानसिंह उधर आ निकले। श्रीराम खेत वाले ने एक बोरिया डाल दिया और पूछने लगे।

श्रीराम : कहो भाई, कुँवर साहब का क्या हाल है ?

भगवानसिंह : कुछ मत पूछो। यह दुनिया भी अजीब है। कालिज में लड़के क्या पढ़ते हैं बेसिर के हो जाते हैं। न किसी की इज्जत, न किसी का मान, न अपने खानदान की शर्म ही रहती है। बुद्धि पर पानी फिर जाता है। कोई धार्मिक शिक्षा नहीं है।

श्रीराम : मैं तो कुँवर साहब का हाल पूछ रहा हूँ। आप कालिज का हाल बतला रहे हैं।

गवानसिंह : मैं कुंवर साहब का ही हाल बतला रहा हूँ। टांग । अच्छी हो गई। कुँवर साहब ने जो कुछ भी मुकाबला डाकुओं ा किया था वह भी अपने मित्र प्रेमचन्द को छुड़ाने के लिये कया था। क्या पूछते हो भाई, आजकल के लड़कों का हाल। ुंवर साहब कहते हैं विलायत की सैर करूँगा।

ीराम : कभी विलायत की सैर। ठाकुर साहब का तो कुछ पता ी ही नहीं।

ागवानसिंह : भैया, ठाकुर तो कुँवर साहब के लिये रोड़ा बने ुए थे। कहते हैं कालिज के जमाने से ही मेरी इच्छा थी कि नन्दन व पैरिस की सैर करूँ। ठाकुर साहब का रोड़ा निकल गया, अब क्या है? बेशर्म कहीं के।

श्रीराम : भाई, हम क्या कह सकते हैं? ठिकानेदार है। लड़के तो आजकल फिल्मी अखबार और प्रेम के उपन्यास पढ़ते हैं। सिनेमा देखते हैं। इनके लिये तो फिल्मी पत्रिकाएँ ही भगवद्गीता हैं।

भगवानसिंह : मैंने बहुत समझाया कि ठाकुर साहब की अनुपस्थिति मे कहीं जाना ठीक नहीं है। मैं किस गिनती में हूँ। कुँवर साहब के मित्र कृष्ण कुमार ने जो कालिज से आये हुए थे बहुत समझाया और लानत-मलामत भी की मगर जब वह किसी तरह राजी न हुए तो उन्होंने भी वहाँ से किनारा किया।

एक ओर यह बातचीत खेत पर चल रही हैं। दूसरी ओर एक कमरे में एक स्त्री और एक पुरुष इसी विषय पर आपस में बातचीत कर रहे थे। कमरे में धीमा-धीमा प्रकाश है। कुँवर साहब बड़े तपाक से फरसी लगाये हुए दम लगा रहे हैं। इनकी नव-वधू जो कुछ साँवले रंग की मालूम होती है उनके समक्ष बड़े नम्र भाव से कुछ कह रही है। कुँवर साहब बोले—"देखो जी, मेरे पिता ने

मेरा विवाह मेरी इच्छा के विरुद्ध किया है। मैं इसका जिम्मेदा नहीं हूँ। माता जी ने कह दिया लड़की सुन्दर है, पिता जी ने चट विवाह कर दिया।"

दुलहन : कुछ भी सही। आपने मुझे अग्नि के समक्ष विधिवत स्वीकार किया है।

कुँवर साहब : मैं मना कब करता हूँ। इसके यह अर्थ नहीं कि मैं अपने देश-विदेश भ्रमण के इरादों को बदल दूँ। कुछ भी हो मैं अब नहीं रुकूँगा।

दुलहन : बस मैं अब अधिक कहना नहीं चाहती। जो आपको मंजूर है वह करें। मुझे भी जो अच्छा लगेगा वह करूँगी। आपको मालूम है कि इसका परिणाम क्या होगा ?

कुँवर साहब : जो कुछ भी हो। बस इतना ही काफी है कि तुम यहाँ से उठकर चली जाओ।

दुलहन बेचारी बेबसी की हालत में कमरे से बाहर हो गई। ठकुरानी साहिबा इसी प्रतीक्षा में बैठी थीं कि कब दुलहन वापस जावे और कब मैं अन्दर जाऊँ और कुँवर साहब को समझाऊँ। तुरन्त कमरे में जाकर कहने लगीं।

ठकुरानी जी : बेटे, कुछ अपने पिता जी की भी खबर ली या तुझे केवल सैर करने की चिन्ता है। पाँच हजार रुपये का डाकुओं के पास भेजने का कुछ प्रबन्ध किया।

कुँवर साहब : कहाँ से प्रबन्ध करूँ, कहाँ भेजूँ ? कुछ पता तो है नहीं।

ठकुरानी जी : फिर सैर क्या मुफ्त में ही हो जायेगी। उसमें क्या रुपये की जरूरत नहीं होगी। जब वे वापस आ जावें तभी जाना।

कुँवर साहब : हाँ उसके लिये तो रुपये का प्रबन्ध करना ही होगा। अब जाओ सुबह को देखा जायेगा।

इतना कहकर कुँवर साहब ने दूसरी तरफ को करवट ले ली। ठकुरानी साहिबा का एकलौता पुत्र था। समझ लिया कि सबेरे उठकर ठीक हो जायेगा। अभी बच्चों की सी हठ नहीं गई है। ठकुरानी जी आराम करने चली गई। उधर कुंवर साहब रुपया जमा करने की स्कीम सोचते-सोचते निद्रा देवी की गोद में चले गये। दिन निकलते ही सन्दूकों के टटोलने का कार्य आरम्भ हुआ। आखिरकार चेहरे पर कुछ हर्ष की रेखा दिखाई दी। एक चैक बुक हाथ लग गयी। मंगू नौकर को आवाज लगाई। "हुक्म, हुक्म" कहता हुआ मंगू हाजिर हुआ।

कुँवर साहब : लो यह पर्चा और पासबुक। शीघ्र पूछकर आओ ठाकुर साहब की अनुपस्थित में इस पासबुक से कैसे रुपया निकल सकता है।

मंगू "जो हुक्म" कहकर चल दिया। कुँवर साहब ने इधर-उधर टहलना शुरू कर दिया। 'यह होगा, वह होगा" दिल के विचार आ ही रहे थे कि नौकर वापस आया और कहा कि बैंक वालों ने बगैर ठाकुर साहब के हस्ताक्षरों के रुपया देने को मना कर दिया है।

कुँवर साहब : अच्छा तो सेठ हजारी लाल को बुला लाओ।

मंगू थोड़ी ही देर में सेठ हजारी लाल को बुला लाया। सेठ जी ने झुककर नमस्ते किया और हुक्म पूछा।

कुँवर साहब : सेठ जी, तुमको मालूम है कि ठाकुर साहब पर आजकल क्या आपत्ति पड़ रही है। डाकुओं को पाँच हजार रुपया भेजना है। रुपया बैंक में मौजूद है। मगर उनकी गैरहाजिरी में निकल नहीं सकता। मैं भी बाहर जा रहा हूँ। या तो ठाकुर साहब आकर आपका हिसाब बेबाक कर देंगे या मैं वापस आकर कर दूँगा। आप अपना पूरा इत्मीनान करा लीजिये।

सेठ जी को ऐसी आसामी कहाँ मिलने वाली थी। फौरन ए‍ रुपये के ब्याज पर रुपया देकर रुक्का लिखवा लिया। कुंवर साह‍ की तैयारी हो चुकी थी। उनके लिये कैसे बाप और कैसे मि‍ प्रेमचन्द। गाड़ी तैयार की गई। सामान रक्खा गया। बैल धू‍ उड़ाते हुए इन्दौर स्टेशन की ओर कदम बढ़ाने लगे।

ठकुरानी साहिबा फूट-फूट कर रोने लगीं, मगर पत्थर को जोंक नहीं लगी।

ईश्वरदत्त ज्ञान अर्थात् वेद

सन्यासी जी अपनी गाय का दूध पीकर कुटिया से बाहर निकले। देखा कि ठाकुर साहब, प्रेमचन्द और गोपी उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रेमचन्द का उत्साह बढ़ा हुआ था। फौरन ही बोल उठा—

प्रेमचन्द : "आपने वेद को इतनी महत्ता क्यों दे रक्खी है ? अक्ल के विरुद्ध बातें कहना और यह आशा करना कि वेद जो कुछ कहता है वह आँख बन्द करके मानने योग्य है। कहां तक ठीक है ?"

सन्यासी : पहले तुमको यह समझना होगा कि बुद्धि के विरुद्ध कोई बात मानने योग्य नहीं होती। मगर बुद्धि भी तभी काम देती है जब उसका कोई सहायक हो। बिना सहायक के बुद्धि बेकार रहती है।

प्रेमचन्द : सहायक कैसा, मनुष्य की बुद्धि विकसित होकर हरएक बात के जानने के योग्य हो जाती है और मनुष्य उन्नति करता चला जाता है।

सन्यासी : बुद्धि क्या मनुष्य की सभी बातें दूसरों की मोहताज हैं। मनुष्य की हरएक वस्तु बेकार है जब तक कि उस वस्तु को दूसरों की सहायता न मिले।

प्रेमचन्द : सब चीजें कैसे मोहताज हैं ?

सन्यासी : देखो यदि सूर्य न हो तो आँखें बेकार हैं। अगर आकाश न हो तो कान बेकार है। अगर जल न हो तो रसना बेकार है। अगर मिट्टी न हो तो नाक बेकार है। खाने की वस्तुएँ न हों तो मनुष्य का शरीर ही बेकार है। अगर ज्ञान (वेद) न हो तो बुद्धि बेकार है।

प्रेमचन्द : वेद से आपका क्या तात्पर्य है। मेरी समझ में नहीं आता आप कहते क्या हैं ? वेद न हो तो बुद्धि बेकार।

सन्यासी : भाई तुमने विद्या कहाँ से प्राप्त की ? माता-पिता से बोलना सीखा। घरबार की वस्तुओं का ज्ञान उनसे हुआ। गुरुजी से विद्या प्राप्त की। एक नियम को समझ कर तरह-तरह के हिसाब लगाने शुरू किये। अगर किसी को यह सहायता न दी जावे तो मालूम है कि वे पशुवत् रह जाते हैं। इंगलैंड के निवासी मूर्ख ही बने रहे जब तक कि रोम ने उन्हें शिक्षा न दी। आजकल भी कुछ ऐसे देश हैं, अमरीका, अफ्रीका एवं आसाम में जहाँ अभी तक कुछ जातियाँ मूढ़ हैं। दूसरे अगर बुद्धि स्वतः ही विकसित होती है तो कोई मिडिल पास, कोई बी० ए०, कोई एम० ए०, कोई डाक्टर ऑफ ला कैसे कहलावें। जहाँ तक कोई विद्या प्राप्त करता है वहीं तक की डिग्री उसे प्राप्त होती है। इसी भाँति सृष्टि में दूसरों की सहायता से मनुष्य विद्या प्राप्त करता चला आया है और कुछ लोगों ने मूल सिद्धान्तों को समझकर और उनका अनुभव करके ज्ञान की वृद्धि भी की है। मगर सृष्टि के आदि में मनुष्य को इन सिद्धान्तों से किसने अवगत कराया ? मनुष्य जो अल्पज्ञ है वह ऐसे सूक्ष्म सिद्धान्तों को कैसे जान सकता था। जैसे ज्योतिष विद्या, आयुर्वेद, जीवात्मा, परमात्मा, सृष्टि की रचना, आवागमन इत्यादि। इन सबकी जानकारी कैसे हो सकती थी जिससे यह सिलसिला पढ़ने-पढ़ाने का आगे चला।

इसी प्रकार ईश्वर ने जहाँ सब वस्तुएँ मनुष्य की सहायता
लिये उत्पन्न कीं। आँखों के लिये सूर्य, कानों के लिये आकाश
त्यादि बनाये, तभी मनुष्य की बुद्धि के लिये वेद उत्पन्न किया
ससे मूल सिद्धान्त मालूम करके मनुष्य ने उन्नति की।

मचन्द : वास्तव में हम दूसरों के मोहताज हैं और उस पर भी
ह घमन्ड। मगर जब तक आप मुझे यह न समझायें कि सृष्टि के
दि में किस तरह और किस की तरफ से वेद प्रकट होते हैं मैं
ीं मान सकता।

यासी : पहले हमको यह समझने की जरूरत है कि हरएक
ज़ का निर्माणकर्त्ता कोई होता है और दूसरी चीज़ वह होती हैं
ससे कोई चीज़ बनाई जा सके। जैसे घड़े का बनाने वाला
हार होता है और मिट्टी से बनाता है। जिस वस्तु से वह
ाता है उसके गुण उस बनी हुई चीज़ में आते हैं। उसमें बनाने
ले को निमित्त कारण कहते हैं और जिस वस्तु से वह चीज़
ती है उसे उपादान कारण कहते हैं। इससे यह सिद्ध होता है
अभाव से कोई वस्तु "भाव पदार्थ' नहीं बन सकती। जैसे
र सोना न हो तो गहना नहीं बन सकता। दूसरा सिद्धान्त यह
के बनाने वाला अगर न हो अर्थात् निमित्त कारण न हो तो
कोई चीज़ नहीं बन सकती। यह मैं पहले बता चुका हूँ कि
पदार्थ किसी निजाम अर्थात नियमबद्ध अवस्था में नहीं आ
ता, परन्तु आज जड़ पदार्थों में जो निजाम यानी नियम नजर
ा है यह नियम जड़ पदार्थ का नहीं, निमित्त कारण यानी
र की तरफ से है और जो जड़ पदार्थ नजर आता है उसका
ादान कारण प्रकृति है।

चन्द : यह मैं मानता हूँ कि परमाणु ही इस विश्व के उपादान
ण हैं। मगर इस कारण कार्य से धर्म का क्या सम्बन्ध। तर्क

शास्त्र तो मैंने भी पढ़ा है इसका ईश्वर और धर्म से क्या सम्बन्ध ?
सन्यासी : ओह तुम्हारे दिमाग में तो यह ही भरा है। तुम वेद शास्त्रों को भी पुराणों की कथा ही समझते हो। मैं तुमको यह दिखाना चाहता हूँ कि वेद या शास्त्रों का इनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। बल्कि वेद ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में बुद्धि के विकास के लिये ऋषियों द्वारा रचे गये। जैसे समस्त बीज सृष्टि के आरम्भ में पैदा हुए और उससे आगे को पौध बढ़नी शुरू हुई इसी तरह से तमाम विद्याओं की उत्पत्ति का बीज भगवान ने ऋषियों द्वारा जीवों के कल्याण के लिये दिया वरना मनुष्य की बुद्धि बेकार थी।

यह लोगों ने मालूम किया है कि ऋगवेद से पुरानी कोई पुस्तक नहीं है पहले यह श्रुतियाँ कहलाई। बाद में पुस्तक के रूप में आ गई। कोई मनुष्य ऐसा नहीं हुआ जो समस्त विद्याओं के मूलरूप को जानता हो और उनको वैसा ही बयान कर दे जैसी कि वे विद्याएं हैं। दूसरे अगर कोई पुस्तक बनाता भी है, तो एम० ए० पास करके बी० ए० की पुस्तक बना सकता है। तो इन वेदों के बनाने वालों ने कौन सी पुस्तकें पढ़ी थीं जिनको पढ़कर यह वेदों का जो ज्ञान का भण्डार है, निर्माण कर सके। यदि कहो कि वे गुम हो गई तो फिर अनवस्था दोष आ जायेगा। अर्थात वे पुस्तकें कौन सी पुस्तकें पढ़कर बनाई और फिर उनसे पहले की पुस्तकें कौन सी पुस्तकें पढ़कर बनाई। फिर आखिर यही मानना पड़ेगा कि जिसने मनुष्य को सद्बुद्धि दी उसी ने मनुष्य को सिखाया भी।

प्रेमचन्द : जरा और समझाइये अभी स्पष्ट नहीं हुआ।

सन्यासी : देखो जब कोई नई मशीन बनाता है तो उसके उचित रूप से चलाने की एक गाइड भी बनाता है और उसके पुर्जों का

ज्ञान भी करता है। इसी प्रकार ईश्वर जो ज्ञान-स्वरूप है अपने प्यारे जीवों के लिये अपने ज्ञान से सृष्टि की रचना करता है और उसको समझाने के लिये बुद्धि देता है और बुद्धि के विकास के लिये वेदों में प्रकट करते हैं जिससे सृष्टि के मूल सिद्धान्त सांसारिक जीवन के नियम और जिस उद्देश्य से जीवों को शरीर दिया गया तथा अन्तिम उद्देश्य की प्राप्ती करने के मार्ग-दर्शन देते हैं। बस इसी कारण जो हम नियम सृष्टि में देखते है वेद भी उसी के अनुसार बताते हैं। बुद्धि भी उसी के अनुसार ग्रहण करती है। यदि कोई बात सृष्टि के नियमों के विरुद्ध कही जाती है वह वेद के विरुद्ध भी होती है और बुद्धि भी उसको स्वीकार नहीं करती है।

प्रेमचन्द : ओ हो, मैं तो इन गेरुवा वस्त्रधारियों को पृथ्वी पर एक भार रूप समझता था। मगर आज कुछ और ही दिखाई दे रहा है। मेरा सब तर्क (लौजिक) इन प्रमाणों के समक्ष धूल में मिलता जाता है मैं तो यह समझता था कि तर्क शास्त्र या विज्ञान का सम्बन्ध धर्म से कुछ नहीं है।

सन्यासी : भाई क्या विज्ञान, क्या ज्योतिष, क्या आयुर्वेद, क्या गणित शास्त्र, क्या गान विद्या और क्या भूगोल विद्या, इन सब विद्याओं का भण्डार ईश्वर ही है। भौतिक पदार्थ में ज्ञान नहीं। यह आप जानते ही हैं कि बच्चे अज्ञानी पैदा होते हैं। बाद में जैसी भी पुस्तकों से, माता-पिता से मित्रों के सम्पर्क में जाते हैं वैसे ही सीखते हैं। फिर इन विद्याओं का भण्डार भी तो होना जरूरी है जहाँ से यह ज्ञान मिला करता है। जब कोई चीज़ कहीं पर होती है वहीं से मिला करती है।

प्रेचचन्द : यह तो पुस्तकों के अध्ययन से हो जाया करता है।

सन्यासी : पुस्तकों की शुरूआत भी तो ज्ञान के बीच अर्थात् वेदों

से ही तो हुई और वेद ईश्वर का ज्ञान है। इसलिये ईश्वर ही समस्त विद्याओं का स्रोत है। विज्ञान-वेत्ता, ज्योतिषी क्या करते हैं। मनुष्य तो एक फूँस का तिनका भी निजी रूप से नहीं बना सका। ईश्वर की बनाई हुई चीज़ों से काम लेकर अपनी वस्तुओं की रचना करता है। प्रकृति के जो गुण व नियम ईश्वर ने रक्खे हैं उनको जानकर उससे काम लेते है। जार्ज स्टीफेन्सन ने जो शक्ति भाप में, ईश्वर ने रक्खी है उसी को मालूम करके इंजन बनाया। यदि ईश्वर लोहा न बनाता तो इन्जन कहाँ से बन जाते। अगर सितारों को पैदा न करता तो ज्योतिष विद्या कहाँ से आती, पर्वत, नदी, समुद्र न बनाता तो भूगोल विद्या कहाँ से आती। अगर बेशुमार चीजों को प्रकट न करता तो गणित विद्या कैसे मालूम होती। अगर औषधियों में गुण पैदा न करता तो डाक्टर कैसे बन जाते। सारांश यह है कि समस्त विद्याओं का भण्डार ईश्वर ही है, वही ज्ञान स्वरूप है, उसी से समस्त विद्याएँ प्रकट होती हैं।

प्रेमचन्द : वाह महाराज धन्य है। नया ख्याल, नई बात। आपने ईश्वर, भौतिक पदार्थ और वेद पर प्रकाश डाला। अब जरा यह बतलाने की कृपा कीजिये कि यह जीव क्या बला है जो दुःख-सुख में फँसा हुआ है। ठाकुर साहब तो ब्रह्म का अंश बतलाते हैं। ऐसे ईश्वर को जो दुःख-सुख में फँसा रहे उसे मानने से क्या लाभ है?
सन्यासी : ठाकुर साहब ने, नवीन वेदांत जो ढाई हजार वर्ष से चल रहा है पढ़ा होगा।

ठाकुर साहब : हाँ मैंने वेदान्त पढ़ा है। बस एक ही सत्य, शुद्ध, मुक्त, ज्ञान-स्वरूप, आनन्द-रूप चेतन आत्मा है। जो आप ही बहुरूप होकर खेल, खेल रहा है। यह ही सबका मत है कि जीव ईश्वर का अंश है और ब्रह्म ही सत्य है। जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब

जब पानी में पड़ता है तो अनेक सूर्य दिखाई देते हैं या समुद्र की बूँदें बुलबुले बन-बनकर अपने को माया के प्रभाव में पृथक्-पृथक् मानने लगती हैं। इसी प्रकार के माया जाल में पड़कर जीव की संज्ञा हो जाती है परन्तु जब ज्ञान प्राप्त कर वास्तविकता को समझ लेता है तो ब्रह्म में लय हो जाता है जैसे समुद्र से बिन्दु कोई पृथक् वस्तु नहीं है।

सन्यासी : आप ईश्वर को खंडित मानते हैं या अखण्ड। यदि वह अंश वाला है तो वह नाश को प्राप्त हो जायेगा क्योंकि अंश वाला होने से अंशों में संयोग होने पर वह महान् हो सकता है और संयोग का वियोग होना लाज़मी है। ब्रह्म सर्वव्यापक होने पर अति सूक्ष्म और निराकार है। उसका प्रतिबिम्ब ही नहीं पड़ सकता क्योंकि प्रतिबिम्ब दूसरी चीजों में पड़ा करता है जो उससे पृथक् होती है। वह तो सर्वव्यापक है। यदि अखण्ड है तो उसका अंश नहीं हो सकता। ब्रह्म ज्ञान-स्वरूप होने से उसके अंश-अंश में ज्ञान है। फिर माया से उसमें भूल पैदा नहीं हो सकती। गुण और गुणों के बीच में किसी हालत में भी माया का या और किसी चीज़ का परदा नहीं आ सकता।

ठाकुर साहब : देखो समुद्र से काई या फैन निकलकर समुद्र पर ही परदा डाल देता है। सूर्य से बादल बनकर सूर्य ही को घेर लेते हैं उसी प्रकार ईश्वर से माया निकल कर ईश्वर पर परदा डाल देती है।

सन्यासी : यह आपकी अल्पज्ञता का प्रमाण है। समुद्र से फैन या काई निकल कर समुद्र के गुण खारीपन पर परदा नहीं डाल सकते बल्कि हमारी आँख और समुद्र के बीच में परदा डालते हैं। सूर्य पर बादल आकर सूर्य और उसके प्रकाश के बीच में जो सूर्य का गुण है परदा नहीं डालते बल्कि हमारी आँख और सूर्य के बीच

रदा डालते हैं। सूर्य और उसका प्रकाश जो उसका गुण है उसके ाच में कोई परदा आ ही नहीं सकता। इसी प्रकार ज्ञान-स्वरूप ह्म और उसके ज्ञान के बीच कोई परदा नहीं आ सकता और न ल पैदा होकर ब्रह्म से जीव बन सकता है।

ाकुर साहब : क्या वेदान्त गलत है ? आप इसको मिथ्यावाद कैसे तलाते हैं। जब ज्ञान हो जायेगा तब वह ब्रह्म का अनुभव करेगा।

न्यासी : ज्ञान जब होगा जब होगा। इस समय तो जो भूला ुआ है वह कौन है ? जो दुःख-सुख को अनुभव कर रहा है। या आपके मत में एक से पृथक् कोई दूसरा चेतन है ?

ठाकुर साहब : नहीं है। चिदोभास जो चेतन का प्रतिबिम्ब अन्तःकरण में पड़ रहा है वह प्रतिबिम्ब ही इस दुःख-सुख को महसूस करता है।

सन्यासी : तो वह ब्रह्म नहीं कहा जा सकता। फिर जब अन्तःकरण की गाँठ खुल जायेगी तो प्रतिबिम्ब जाता रहेगा फिर उसको जो सदैव से दुःख-सुख भोगता आया है क्या आनन्द की प्राप्ति हुई ?

प्रेमचन्द : हमारा पेट तो आपकी अमृत-रूपी वाणी से नहीं भरा।

सन्यासी : तो आपको इस समय भूख लग रही होगी। क्या आपके पास खाने-पीने का कुछ प्रबन्ध है।

ठाकुर साहब : हम तो कल से ही भूखे हैं। अब हमको जाने की आज्ञा दीजिये।

सन्यासी : अगर तुम लोग दलिया बनाकर खा सकते हो तो मैं तुमको दे सकता हूँ। चाहे नमकीन खाओ चाहे मीठा।

ठाकुर साहब : स्वामी जी, मुसीबत के समय मर्यादा कायम नहीं रहती। वास्तव में हम थके हुए हैं और भूख भी लगी हुई है, यदि दलिया मिल जाय तो हम तैयार करके खा लेंगे।

सन्यासी ने दलिया लाकर दिया और एक अंगीठी भी दे दी

दोनों जंगल से लकड़ी लेकर दलिया बनाने में लग गये। सन्यास जी अन्दर कुटी में आराम करने चले गये। दलिया तैयार हो जाने पर तीनों ने पेट भरा और आराम करने लगे।

हवाई यात्रा

देहली के हवाई अड्डे पर कुछ यात्री अपना सामान बुक कर रहे हैं। कुछ अपने मित्रों से विदाई ले रहे हैं। कोई अपने भाई बन्धुओं से जो वहाँ उन्हें विदा करने के लिये आये हैं बातों में संलग्न हैं। कोई यात्रा की मुसीबतों की चिन्ता में मग्न है। मगर हमारे कुंवर चन्द्रसिंह जी अपनी मूँछों पर ताव दे देकर अकेले ही टहल रहे हैं। दिमाग में अरमानों का तूफान उठ रहा है।

हवाई जहाज में बैठूँगा। समुद्र पर से होकर उड़ूँगा। ओह वह कैसा अच्छा दृश्य होगा जबकि ये पृथ्वी पर चलने वाले लोग छोटे बच्चों जैसे दिखाई देंगे। जगह-जगह की सैर, पैरिस की परियों के नाच, विलायती बढ़िया शराब, उस पर भी सस्ते दाम, विविध मनोरंजक दृश्य, सिनेमा, होटल, चाय-बिस्कुट, फैशनेबिल बीबी। अहाता, मकान और कोठी का नक्शा भी वहाँ से तैयार करा लाऊँ तो अच्छा होगा। लाखों की जायदाद मौजूद है और कोठी में फर्नीचर, मेज, कुर्सियाँ, दरी, फर्श, परदे और लैम्प भी तो होने जरूरी हैं। परन्तु बिजली तो गाँव में है ही नहीं। बिना बिजली के कैसे काम चलेगा। रेडियो ही कैसे लगेगा। फिर तो शहर ही में कोई कोठी बनाने के लिये जमीन तैयार करनी होगी।

ऐसे हजारों मंसूबे बाँधते हुए कुंवर साहब अपने दिमाग को परेशान कर रहे थे। कभी आप ही हँसते हैं कभी त्यौरी चढ़ जाती हैं। फिर ठन्डी साँस लेने लगते हैं। यह सब बातें तो हैं मगर यह ख्याल दिल में एक बार भी नहीं आता कि उनके भाग्य

का लेखा कोई और है। मनुष्य चाहता कुछ है और होता कुछ है।

असंख्य मनुष्य इस दुनियाँ में उत्पन्न हुए और अपने-अपने मंसूवे बाँधकर चले गये। यमराज ने किसी पर तरस न खाया। ऐ इंसान तेरी क्या हस्ती है ? यह भी तुझको खबर है कि कल क्या होगा ? बल्कि अभी क्या होने वाला है ?

तूने कभी यह न विचारा कि मैं कौन हूँ और तुझको क्या करना है। तूने अपने फर्ज को कभी न समझा और न कभी अदा किया। क्या तूने कभी यह सोचा कि यह लोग रोजाना कहाँ को चले जा रहे हैं कि फिर वापस नहीं आते। यह दुनिया केवल एक सराय के मानिन्द है। क्या कोई यात्री धर्मशाला में रक्खी हुई वस्तुओं को अपना समझता है। फिर यह जानते हुए कि आज तक कोई भी वस्तु जिसके एकत्र करने में मनुष्य अपने प्यारे जीवन को समाप्त कर देता है उसके साथ नहीं जाती। बल्कि उनके जमा करने में ही अपनी खुशी और अपना फर्ज समझता है। क्या कोई मनुष्य अपने फर्ज को न समझते हुए अपने पिता को डाकुओं के फंदे में छोड़कर केवल अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये तैयार हो सकता है और जो एक कन्या को विवाह के वन्धन में डालकर उसकी जिन्दगी को वरवाद करने पर तुला पड़ा हो। क्या ऐसा आदमी कभी आराम की जिन्दगी वसर कर सकता है।

हवाई जहाज शाम को पाँच बजे रवाना हुआ। आकाश में पखे का शोर मचना आरम्भ हुआ। रात्रि वढ़ने पर यात्री ऊँघने लगे मगर कुंवर साहव कभी-कभी अपनी आशाओं की पूर्ति का स्वप्न देखने पर अपनी सीट पर उछल-उछल पड़ते थे। कभी जंमाई आतीं कभी बदन तोड़ते। जहाज रात्रि भर चलता रहा। दिन निकलने का वक्त करीव जाता जा रहा था। कोहरा आस-

मान पर छाने लगा। हवा का ज़ोर बढ़ने लगा। समुद्र में तूफान उठने लगे। यकायक जहाज डगमगाया। सवारियाँ सचेत हुई। क्या बात है, क्या बात है। एक दूसरे से पूछने लगे। चालक ने खतरे की सूचना दी। भगवान-भगवान का शब्द अपने आप ही मुंह से निकलने लगा। जिन्होंने कभी ईश्वर का ध्यान उम्र भर न किया था उनको भी दुनिया की क्षणभंगुरता और ईश्वर की हस्ती का सबूत मिलने लगा।

चालक के हाथ काँपने लगे। दिमाग़ फिरने लगा। सबके मुंह से "ओह माई गौड", "हे ईश्वर", "हे राम", "या अल्लाह" शब्द निकलने लगे। जो कुछ आगे आने वाला था वह आने लगा। सब घबरा गये। इन्जन में आग लग गई और कुछ क्षणों में ही जहाज न जाने कहाँ जा गिरा। यात्रियों का कुछ पता नहीं क्या हुआ। जिसने जो कुछ अपनी जान बचाने के लिये किया होगा उसका हाल तो वही जानता होगा। हमको तो सिर्फ यह मालूम है कि दो रोज बाद यान के टूटने की खबर एक समाचार पत्र में प्रकाशित हुई और मरने वालों की सूची में कुंवर चन्द्रसिंह आफ विक्रमपुर का नाम सबसे ऊपर था। ●

ईश्वर और जीव का भेद

संध्या का समय हो चला। सन्यासी जी अपने नित्यकर्म तथा भोजन से निवृत्त होकर आराम कर चुके, परन्तु प्रेमचन्द और ठाकुर साहब ऐसे सोये हैं कि उठने का नाम ही नहीं लेते। आखिरकार सन्यासी जी को ही उन्हें उठाने का कष्ट करना पड़ा।

सन्यासी : ठाकुर साहब, क्या बहुत थक गये कि आपकी अभी तक आँखें नहीं खुलीं।

ठाकुर साहब : हाँ महाराज. पड़कर खबर ही नहीं रही। अब

काफी समय हो गया है और यहाँ से कूच करने में परेशानी भी होगी। डाकुओं का भय भी है। कुछ शंकायें भी निवारण करनी हैं। यदि आप आज्ञा दें तो हम कुछ और विश्राम कर लें। प्रातःकाल सवेरे चले जायेंगे।

सन्यासी : प्रेमचन्द जी ने जीव के बारे में पूछा था कि यह क्या वस्तु है। उसका उत्तर हमने अभी नहीं दिया है।

ठाकुर साहब : आपने अपने उत्तर में वेदान्त को मिथ्यावाद बतलाया। क्या आप वेदान्त को नहीं मानते।

सन्यासी : हम वेदान्त को मानते हैं, परन्तु मिथ्यावाद को नहीं। जगत् नाशवान् अवश्य है और नाश होने के अर्थ है कार्य का कारण में मिल जाना न कि अभाव हो जाना। कारण का अर्थात् प्रकृति का नाश कभी नहीं होता। यह समस्त जगत् प्रकृति या अव्यक्त तथा परमाणु रूप में रहता है। जगत् कार्य रूप है और इसका कारण प्रकृति है। प्रकृति भी केवल उपादान कारण है अर्थात् जैसे घड़े के निर्माण में मिट्टी। परन्तु जिस प्रकार स्वयं मिट्टी घड़े का रूप नहीं ले सकती। उसके निर्माण के पीछे एक शक्ति निहित है। यह शक्ति अथवा निमित्त कारण कुम्हार होता है अर्थात् कर्त्ता।

एक सच्चिदानन्द ब्रह्म से अविद्या, मूढ़ता, जड़ वस्तु, पवित्र-अपवित्र, दुःख-सुख, पाप-पुण्य जैसी एक दूसरे के विपरीत वस्तु पैदा नहीं हो सकती। जड़ से जड़ की उत्पत्ति होगी। चेतन केवल कर्त्ता हुआ करता है। वेदान्त यही है कि सभी वस्तुएँ और जीव व प्रकृति भी ईश्वर से ही प्रकट होती है। न कि सब वस्तुएँ ईश्वर स्वयं ही बन जाता है। यदि ईश्वर जीव को शरीर ही न दे तो जीव ही कैसे प्रकट हो। यदि ईश्वर परमाणुओं का ठीक-ठीक संयोग करके सृष्टि की रचना न करें तो जगत् कैसे प्रकट

हो। ईश्वर ही से सब वस्तुओं की हस्ती प्रकट होती है। यहाँ तक कि ईश्वर यदि सृष्टि रचना न करे तो ईश्वर की सत्ता को ही कौन जान सकेगा।

ठाकुर साहब : क्या ईश्वर सर्व शक्तिमान् नहीं है ? क्या वह अपनी शक्ति माया से जीव नहीं बना सकता। वह जो चाहे सो कर सकता है।

सन्यासी : भाई, यह तुम्हारा कहना गलत है कि ईश्वर जो चाहे सो करे। चाह उसमें हुआ करती है जिसमें किसी वस्तु की कमी हो। ईश्वर तो सभी वस्तुओं का मालिक है। फिर कमी कौन सी रह गई जिसकी वह कामना करे। वह तो उदासीन है और रागद्वेष से परे है। सर्वशक्तिमान के अर्थ यह हैं कि वह अपने काम अर्थात् सृष्टि की रचना, स्थिति, प्रलय बिना किसी दूसरे की सहायता के अपनी अनन्त शक्ति से कर लेता है।

प्रेमचन्द- : जब ईश्वर को किसी वस्तु की चाह नहीं तो वह सृष्टि की रचना ही क्यों करता है।

ठाकुर साहब : क्या ईश्वर के लिये कोई बात असम्भव भी है ?

सन्यासी : यदि तुम ध्यानपूर्वक विचार करोगे तो मालूम होगा कि असम्भव का सिद्धान्त मेरा या आपका बनाया हुआ नहीं है बल्कि ईश्वर का ही बनाया हुआ है। जिसमें असम्भव बातें सृष्टि में रख कर असम्भवता का सिद्धान्त प्रकट किया है। जैसे अंधेरा और उजाला एक समय में और एक स्थान में नहीं रह सकते। सर्दी-गर्मी भी एक समय में और एक जगह नहीं रह सकतीं अर्थात् दो विरोधी वस्तुएँ एक समय में एक जगह में नहीं रह सकतीं। यह ईश्वर का ही तो नियम है। मैंने या तुमने तो नहीं बनाया। बल्कि लोगों ने इन नियमों को मालूम करके लोगों को बतलाया है कि असम्भव बातें भी ईश्वर की सृष्टि में है और यह ईश्वर का

ही वनाया हुआ नियम है। फिर आगे विचारिये कि क्या ईश्वर दूसरा ईश्वर वना सकता है। क्या वह ज्ञान-स्वरूप ईश्वर अविद्या रूप हो सकता है। क्या वह किसी को अपने राज्य से बाहर निकाल सकता है।

ठाकुर साहव : ठीक है, परन्तु ईश्वर के क्या यह ही तीन काम हैं अर्थात् उत्पत्ति स्थिति और प्रलय। इसके अतिरिक्त आप कैसे कह सकते हैं कि और कुछ कर ही नहीं सकता।

सन्यासी : इसके अतिरिक्त तुम या अन्य कोई भी यह तो बतलाओ कि और कौन सा काम रह गया जिसमें उसकी शक्ति काम आती है।

ठाकुर साहव : (कुछ सोचकर) ठीक है। परन्तु ईश्वर सृष्टि के नियमों के विरुद्ध कार्य क्यों नहीं कर सकता।

सन्यासी : सृष्टि के जो नियम हैं वह ईश्वर के नियम हैं। जव मनुष्य अपने ही नियमों के विरुद्ध चलना पसन्द नहीं करते वल्कि बुरा समझते हैं तो फिर ईश्वर अपने अटल नियमों के विरुद्ध कैसे चले। वह पूर्ण ज्ञान-स्वरूप है। यदि वह (ईश्वर) सृष्टि के नियम बदलता रहे तो मालूम है क्या होगा ?

ठाकुर साहव : कुछ भी न होगा। वह अभाव से भाव को पैदा कर सकता है। वह किसी वस्तु के अस्तित्व को अभाव में ला सकता है। हरएक वस्तु का स्वभाव वदल सकता है। उसकी शक्तियों को कौन जान सकता हैं ?

सन्यासी : यदि दुनियाँ में किसी वस्तु का स्वभाव वदल जाय तो अग्नि ठण्डी हो जाय और किसी वस्तु को गर्म ही न कर सके। फिर तो भोजन पकना ही कठिन हो जावे। ठण्डा पानी पीने से मुंह जल जाय। औषधियाँ लाभ के स्थान पर हानि कर जाया करें। सभी काम गड़वड़ हो जायें। रेल, तार, वायु, जलयान

सभी बेकार हो जायें। न मालूम कब किस वस्तु का स्वभा
बदल जावे।

यदि अभाव से कोई वस्तु बन जाय तो स्वयं ही अभाव
वस्तुएँ बन-बन कर सबको प्राप्त हो जावें और यदि किसी वस
का अस्तित्व स्वयं ही मिट सके तो परिवार, मकान, मोटर आदि
देखते-देखते ही लुप्त हो जावें। कोई नियम ही न रहे। चो
इत्यादि का पता ही न लगे। कह दें कि जमीन निगल गई। को
तो बिना गुरु के ही पढ़ जावे और किसी-किसी की पढ़ी हुई विद्य
ही स्वयं नष्ट हो जावे। ईश्वर के नियम अटल हैं। नियम विरुद्ध
कार्य करने से हरएक निकम्मा ही कहलाता है।

ठाकुर साहब : क्या यह सभी बातें गलत हैं कि ईश्वर अजन्मा
होकर भी जन्म लेता है। न्यायकारी होता हुआ भी पापियों को
तार देता है। जब कभी भक्तों पर मुसीबत आती है तुरन्त ही
रक्षा करता है। जब पाप बढ़ता है तो असुरों के वध करने के
लिये उसको जन्म लेने की जरूरत हुआ करती है।

सन्यासी : यह आपकी भूल है। ईश्वर ने अपने ज्ञान अर्थात् वेद
में जीवों को यही उपदेश दिया है कि ईश्वर अजन्मा है, निराकार
है, न्यायकारी है, दयालु है। पापियों को तारना न्याय विरुद्ध है।
जब मनुष्य ही मुन्सिफ बनकर अन्याय करता है तो उसे अन्यायी
कहते हैं। फिर ईश्वर को क्या कहोगे। तुम इतना भी नहीं
समझते कि मनुष्य को भोग ईश्वर की तरफ से कर्मानुसार मिलता
है और किसी की तरफ से नहीं मिलता फिर ईश्वर की तरफ से
ही कर्मानुसार मुसीबत आया करती है तो उसके टालने का क्या
अर्थ। कुल सृष्टि ही उसकी पैदा की हुई है तो असुर क्या आप
ही पैदा हो जाते हैं जो उनको मारने के लिये जन्म लेता है। किसी
को जीवित रखना ईश्वर के ही हाथ में है। अपना जरा सा तेज

हटाया और हृदय की गति बन्द हुई। यह प्राण तथा दिल उसी की शक्ति से चलते हैं। ईश्वर हरएक स्थान पर होने से सब पर नियंत्रण रखे हुए हैं। कभी एक सम्राट किसी मनुष्य को फाँसी देने नहीं आता। जब ईश्वर समस्त ब्रह्मांड को प्रलय की शक्ल में लाने की शक्ति रखते हैं तो एक तुच्छ मनुष्य को मारने के लिये शरीर धारण करने की उनको क्या आवश्यकता है।

ठाकुर साहब : जब ईश्वर इतने शरीर बनाता है तो क्या अपने लिये शरीर नहीं बना सकता ?

सन्यासी : तुमको यह भी मालूम नहीं कि यह शरीर क्यों बनाये जाते हैं। इसको हम आगे बतलायेंगे। ईश्वर ज्ञान-स्वरूप और सर्वव्यापक होने से सब काम बगैर औजार के ही कर लेते हैं। यह शरीर मनुष्य को औजार की भाँति ही तो मिला है। जैसे तुम अर्थात् तुम्हारा जीव इस शरीर में व्यापक होने से तुम्हारे हाथ पैर चलाता है, बिना किसी औजार की सहायता के। उसी प्रकार ईश्वर अपनी सर्वव्यापकता से समस्त ब्रह्मांड में चेतना देते हैं। हम एक देशीय हैं। हमको बाहर काम करने के लिये शरीर की बतौर औजार के जरूरत पड़ती है परन्तु ईश्वर को शरीर की जरूरत नहीं क्योंकि वह हरएक परमाणु में व्यापक होकर उसे चेतना देता है।

ईश्वर कभी बिना आवश्यकता काम नहीं करता क्योंकि वह अपने स्वभाव से ही कार्य करने वाले हैं न कि अपने इरादे से।
ठाकुर साहब : बगैर इरादे के कोई काम नहीं होता। स्वभाव ही से कैसे होता है।

सन्यासी : जैसे आँख के पलक, जब आँख को जरूरत होती है फौरन ही काम करते हैं। अपने आप ही न जाने कितनी बार

दिन रात में हजारों बार आँखों को साफ करते रहते हैं। आपको कभी मालूम भी नहीं होता। वह पलकों का स्वभाव है।

ठाकुर साहब : क्या ईश्वर का स्वभाव कभी नहीं बदलता ?

सन्यासी : ईश्वर का तो क्या बदलेगा किसी वस्तु का भी नहीं बदला करता। जो सोंठ का स्वभाव जब था जबकि आयुर्वेद बना आज तक उसका वही स्वभाव चल रहा है और यही रहेगा। आम का स्वभाव जो पहले था वह अब भी है। जो भी ईश्वर की बनाई हुई वस्तु है उसका स्वभाव कभी नहीं बदलता। ईश्वर की सभी बातें अटल हैं और वह ईश्वर) भी अटल है। क्योंकि गुणों से ही गुणी का ज्ञान हुआ करता है। जैसे एक लाल मिर्च है। उसमें सुर्खी, लम्बाई, चौड़ाई, चरपराहट, रूप, गुण इत्यादि रहते हैं। जिस जगह पर यह गुण मिलेंगे उसको आप मिर्च कहेंगे। इसलिये गुणी गुणों का समाहार अथवा गुणों का आधार अर्थात् किन्हीं विशेष गुणों का ही किसी वस्तु में एक होना ही उस वस्तु का नाम होता है। यदि विचार करो कि जो वस्तु भी दुनिया में है वह गुणों से ही बनी हुई है। अतः गुण और गुणी में सम्बन्ध (समवाय सम्बन्ध) होता है। अर्थात् यदि कोई वस्तु नहीं होती तो उसमें गुण भी नहीं होता। यदि गुण नहीं होता तो गुणी भी नहीं होता। गुण अपने द्रव्य के आश्रय पर रहता है और गुण में कोई गुण नहीं हुआ करता बल्कि गुण किसी चीज़ अर्थात् द्रव्य में ही रहा करता है। यह गुण और गुणी का भेद यदि तुम समझ गये तो तुम्हारी सभी शंकाएँ दूर हो जायेंगी। गुण में यदि कोई परिवर्तन हो जाय तो वह चीज़ न रहेगी।

ठाकुर साहब : आपने तो हमारी बीस वर्ष की लगातार वेदान्त की जानकारी का सब परिश्रम बेकार कर दिया। आपने कौन से वेद पढ़े हैं। यह तो कोई और विद्या है।

सन्यासी : यह आपका अपराध नहीं है। जो भी पुस्तकें आजकल पढ़ी जाती हैं वह भक्ति मार्ग की है। उनमें अक्ल को दखल नहीं होता। दूसरी पुस्तकें नवीन वेदान्त की हैं जो एक प्रकार का मिथ्यावाद है। मैं आपको जो बात बतला रहा हूँ वह ऋषि-मुनियों के रचे हुए दर्शन शास्त्रों की बात कह रहा हूँ। नवीन वेदान्ती तो केवल वेदान्त दर्शन से ही काम लेते हैं।

ठाकुर साहब : अच्छा तो वह प्रेमचन्द वाली बात, कि जीव क्या बला है, बतलाइये।

सन्यासी : अच्छा, गुण दो प्रकार के होते हैं। एक नैमित्तिक (अस्थायी) और दूसरा स्वाभाविक। नैमित्तिक गुण वह होता है जो किसी दूसरी वस्तु के मिल जाने से उसमें प्रतीत होता है। जैसे पानी में गरमी आने से जो अग्नि का स्वभाव है जल गरम हो जाता है। दूसरा गुण स्वाभाविक है। जैसे जल का स्वभाव ठन्डा है। यही उसका स्वाभाविक गुण है परन्तु गर्मी आने से गर्म प्रतीत होता है। यह गर्मी निकल जाने पर वह अपने असली स्वाभाविक गुणों पर कायम रहता है। यह स्वाभाविक गुण कभी नहीं जाता।

अब मनन कीजिये कि जीव क्या है। जिसके निकलने के बाद यह शरीर सड़ने लगता है। इस जीव की जानकारी उसके स्वाभाविक गुण जानने से होगी। हमारी तीन दशाएँ होती हैं। कभी जागते हैं, कभी सोते हैं, कभी स्वप्न देखते हैं। जब तुम सोते हो तो तुम्हारी यह जागृत अवस्था जाती रहती है। फिर स्वप्न देखते हो। परन्तु यह स्वप्न अवस्था भी उस समय जाती रहती है जब तुम गहरी नींद यानी सुषुप्ति अवस्था में चले जाते हो। वहाँ न दुःख रहता है न सुख, न किसी बात की खबर। लिहाजा असली स्वरूप जीव का वही है जो जागकर कहता है कि बड़े

आनन्द से सोया। शेष बातें जीव के साथ अन्य वस्तुओं का संयोग होने के कारण पैदा होती हैं।

प्रेमचन्द : जब सुषुप्ति में कुछ रहता ही नहीं तो उसके गुण ही क्या हो सकते हैं।

सन्यासी : अगर कुछ नहीं रहता तो वह जागकर कैसे कहता है कि बड़े आनन्द से नींद आई। यह आनन्द किसको हुआ। इस आनन्द को प्राप्त करने वाला जीव ही तो था जो तब भी अपने रूप में मौजूद था। जिसके गुण केवल ज्ञान और प्रयत्न हैं।

प्रेमचन्द : सुषुप्ति में न तो ज्ञान ही रहता है न प्रयत्न ही रहता है। इसलिये जीव के गुण मालूम नहीं होते।

सन्यासी : यदि ज्ञान नहीं रहता तो स्मृति कैसे बनती। इसी स्मृति से तो कहता है कि बड़े आनन्द से सोया। दूसरे प्रयत्न में केवल करना ही शामिल नहीं है "सहना" भी प्रयत्न ही है। ऐसे समय जीव का प्रयत्न परम ब्रह्म परमात्मा के आनन्द के सहने में होता है और उस समय स्मृति रखकर जागने पर जब बोलने के योग्य होता है तो कहता है कि बड़े आनन्द से सोया। न कोई दुःख था न कोई चिन्ता।

ठाकुर साहब : जीव तो आनन्द रूप है। उस समय वह अपने रूप में रहता है और आनन्द अनुभव करता है। जागने पर मनुष्य अपने को ताजा तथा प्रफुल्लित अनुभव करता है तथा उसे आनन्द का अनुभव जागने पर होता है।

सन्यासी : ठाकुर साहब, आपका विचार नवीन वेदान्त अर्थात् मिथ्यावाद की तरफ चला जाता है। क्या कभी समुद्र पानी की तलाश में मारा-मारा फिरता है ? जीव की जितनी भी क्रियाएँ है अर्थात् कोई पढ़ता है, कोई मजदूरी करता है, कोई पूजा करता है, कोई सोता है, कोई करवट बदलता है, कोई उठता

की प्राप्ति के लिये यह शरीर रूपी औजार जीव को दिये गये हैं।

प्रेमचन्द्र : जीव को ईश्वर ने मुक्ति (मोक्ष) देने के लिये बनाया है। "मजिले मकसूद" अभीष्ट उद्देश्य क्या होता है ?

सन्यासी : ईश्वर ने जीव और माद्दे को नहीं बनाया।

प्रेमचन्द : फिर कहाँ से आ गया।

सन्यासी : तुम्हारा माद्दा (मैटर) कहाँ से आ गया। माद्दे (मैटर) का भी तो कभी अभाव नहीं होता। यह तो तुम मानते ही हो। जिस चीज का अभाव नहीं होता वह पैदा भी नहीं होती। जो वस्तु पैदा होगी वही नाश को प्राप्त होकर जिस चीज़ से वह बनती है उसी में मिल जाती है। उसी में मिल जाने को नाश होना कहते हैं। परन्तु जिसका कारण नहीं होता वह अनादि और अनन्त होती है। ऐसे ही ईश्वर, ज़ीव, माद्दा (मैटर) तीनों हैं। यह कभी न उत्पन्न हुए और न इनका कभी अन्त होता है।

ठाकुर साहब : ऐसा मानने से ईश्वर की महिमा घटती है वह अद्वैत नहीं रहता जैसा कि श्रुतियों में अद्वैत कहा गया है।

प्रेमचन्द : आपका बीस वर्ष का पढ़ा लिखा आपको पक्षपात करने पर मजबूर करता है। हर बार वही बात आप फिर-फिर कर कहे जा रहे हो।

सन्यासी : प्रेमचन्द जी, जब तक दूसरी तरफ सूर्य का प्रकाश दिखाई न दे वह लालटेन के प्रकाश को ही गनीमत समझता है। यदि जीव और प्रकृति किसी समय में न रहते तो जिस समय नहीं रहते उस समय ईश्वर की ईश्वरता नहीं रहती होगी। उस समय वह दिवालिये की भाँति रहता होगा जिसका माल सब समाप्त हो गया हो। सब कुछ रहा ही नहीं तो वह किसका ईश्वर रहता है और यदि ईश्वर का कोई गुण ऐसा होता कि वह कभी

रहता हो और कभी न रहता हो तब तो उसमें विकार पैदा हो जाता और वह भी नाश को प्राप्त हो जाता।

इस जीव और प्रकृति के होने से ईश्वर की महिमा घटती नहीं बल्कि बढ़ती है। ईश्वर एक राजा के समान है। उनकी प्रजा जीव और उनकी मिल्कियत प्रकृति है। चूंकि ईश्वर अनादि अनन्त है वह अपनी प्रजा को आनन्द रूप बनाने के लिये सृष्टि की रचना करता है।

प्रेमचन्द : जब ईश्वर सर्व शक्तिमान् है तो जीवों को वैसे ही आनन्द रूप क्यों नहीं बना देते ?

सन्यासी : जो स्वभाव या गुण किसी वस्तु से होते हैं उन्हीं गुणों का समाहार वह वस्तु होती है। यह बात मैं पहले बता चुका हूँ। गुण और गुणी के बीच में कोई चीज़ नहीं आ सकती जैसा कि नवीन वेदान्ती लोग ब्रह्म और उसके ज्ञान के बीच माया का आना बताते हैं जिससे अविद्या पैदा होती है, यह असम्भव है। ज्ञान और ज्ञान स्वरूप के बीच किसी चीज़ का परदा आ ही नहीं सकता। जीव स्वयं ही अल्पज्ञ है। उसको कुछ पता नहीं होता कि वह क्या है और उसे क्या करना है। जब कोई बढ़ई एक किवाड़ को बनाता है तो उसे किवाड़ के बनाने के लिये कुछ औजारों की जरूरत पड़ती है यदि वे औज़ार पुराने और खुट्टल हो जाते हैं तो उनको दुरुस्त करता ही रहेगा जब तक कि किवाड़ बनकर तैयार न हो जावें। इसी तरह से जीव को अपना ज्ञान बढ़ाने के लिये औजारों की जरूरत होती है। भगवान ने जीव को जितना वह सूक्ष्म है उसको औजार मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण बतौर औजार के दिये। यह सूक्ष्म शरीर जीव को आनन्द की प्राप्ति के लिये मिलते हैं और बराबर साथ लगे रहते हैं जब तक कि आनन्द की प्राप्ति

न हो जाय। इस सूक्ष्म शरीर के रहने और काम में लाने के लिये एक मांस का ढाँचा और मिला हुआ है जो टूट-फूट जाय करता है और इसके नष्ट होने को ही मृत्यु कहते हैं। जिस तरह औजार नये बना लिये जाते हैं उसी तरह से नये ढाँचे बराबर मिलते रहते हैं। इसे ही जन्म और मरण कहते हैं। लेकिन जब आनन्द की प्राप्ति हो जाती है तो न सूक्ष्म शरीर रहता है और न नये ढाँचे ही बनते हैं। यह जन्म-मरण समाप्त हो जाता है। इससे तुमको यह भी मालूम हो गया होगा कि शरीर आनन्द की प्राप्ति के लिये जीव को ही मिलता है और जब ईश्वर स्वयं ही आनन्द स्वरूप है तो उसे किसी शरीर की आवश्यकता नहीं।

प्रेमचन्द : (बात काटकर) मैं तो यह पूछ रहा था कि बगैर शरीर दिये हुए क्यों न आनन्द रूप कर दिया ? उत्तर स्पष्ट नहीं होता।

सन्यासी : ठीक है। हाँ. हाँ मैं अभी इसी बात पर आता हूँ। देखो जीव चेतन है। चेतन उसको कहते हैं जो करने, न करने और उलटा करने अर्थात् मनमाना काम करने की शक्ति रखता है। वह स्वतन्त्र होता है। माँ बाप अपने बच्चों को विद्या सिखाना चाहते हैं मगर कई बार वे नहीं पढ़ते। कोई भी घुट्टी में डाल कर नहीं पिला सकता क्योंकि वह स्वतन्त्र होता है। दूसरे आँख यदि सूर्य को यकायक देखती है तो अन्धी हो जाती है। फुँकने में एक दम हवा भर दो फूट जावेगा। मगर शनैः शनैः अभ्यास से सब काम ठीक होते चले जाते हैं। लोहे को अग्नि में डाल दो तो शनैः शनैः गर्मी को प्राप्त कर तद्रूप हो जायेगा। रुई को जितना धुनते चले जाओगे फैलती चली जायेगी। इसी प्रकार अपनी ज्ञान स्वरूप शक्ति से जिस तरह से जीव आनन्द स्वरूप हो सकते थे वही औज़ार अपनी सवशक्ति से दिये। ज्ञान दिया, बुद्धि

दी फिर वह अपने पुरुषार्थ से ईश्वर की महिमा को समझकर और अपने अभीष्ट उद्देश्य को जानकर अपनी स्वतन्त्रता से उपासना के द्वारा शनैः शनैः लोहे में गर्मी प्रवेश करने के समान और रुई के धुनकर फैलने के समान अपना ज्ञान फैलाकर आनन्द रूप हो जाता है। स्वतन्त्र अपने हित को मानकर ही पुरुषार्थ करके अपना कोई काम किया करता है। उसको कोई चीज मजबूर नहीं किया करती।

इतना कहकर स्वामी जी शान्त हो गये और किसी ध्यान में मग्न हो गये। फिर थाड़ी देर बाद आँखें खोलकर यों कहने लगे।

भाइयों, दो चार मिनट बाद ही कोई कष्ट आने वाला है घबराने की कोई बात नहीं है। तुम सब लोग सावधान होकर बैठ जाओ। ईश्वर पर भरोसा रक्खो, दिल को मजबूत बनाये रक्खो। यद्यपि तुम्हारा कुछ बिगड़ेगा नहीं परन्तु कष्ट जरूर होगा।

इतना कहकर स्वामी जी ने मौन धारण कर लिया और समाधि में मग्न हो गये। प्रेमचन्द और ठाकुर साहब आश्चर्य में पड़ गये कि क्या बात हुई।

द्वितीय खण्ड

"प्रतिशोध"

किसी ने कहा है "देह धरे सब ही पर बीती', क्या कोई पापी हो या पुण्यात्मा इस संसार में जो भी आया है उसे अपने कर्मों का भोग भोगना ही पड़ा है। बड़े-बड़े धर्मात्मा, धर्मावतार, यहाँ तक कि सूर्य और चन्द्रमा को भी गहना पड़ा। श्री रामचन्द्र जी. सत्यवादी हरिश्चन्द्र, सत्यवती सीता जी सभी पर मुसीबतें आइ फिर हमारे सन्यासी जी जो वर्षों से तपस्या में संलग्न थे किस प्रकार आपत्ति से बच सकते थे। डाकू लूट का माल अपने घरों में रखकर दूसरे दिन जब वापिस लौटे और वहाँ अपने सरदार की लाश को देखा तो भौंचक रह गये और उन्हें कुछ तो अपनी चिन्ता हुई साथ ही क्रोध की अग्नि प्रज्वलित होने लगी। किसी ने सर्द आह खींची तो किसी ने दाँत पीसने शुरू कर दिये आखिरकार उनमें से एक खड़ा हुआ और उच्च स्वर से बोला।

"भाइयों तुम आज हमारे सिर के मुकुट मणि को बेबसी की दशा में पड़े देख रहे हो। जो हमारे खून की एक-एक बूँद पर अपने जीवन का बलिदान करके, हमारे तथा हमारे बच्चों के निर्वाह का प्रबन्ध कैसे प्रेम तथा सहानुभूति से किया करते थे। हमने उन्हें अकेला छोड़कर अपने बीच में से खो दिया है और वह हमारा प्यारा साथी जो ठाकुर साहब के पहरे पर तैनात था उसका भी पता नहीं है। यह उन्हीं लोगों का काम मालूम होता है। अब पुलिस हमारे पीछे होगी। तुम में से एक जाकर सरदार के घर सूचना दे दो और हम मिलकर उन बदमाशों से बदला लें

जिन्होंने यह हत्या करके पाप कमाया है। भाइयों शपथ लो कि जब तक बदला न ले लेंगे तब तक चैन से नहीं बैठेंगे।"

सब लोगों ने बीड़ा उठाया और घोड़ों पर सवार हुए। एक डाकू ने सरदार के घर जाकर सूचना दी। सरदार की धर्मपत्नी तुरन्त ही अपना जरूरी सामान लेकर पुलिस के डर से कहीं जा छिपी। उधर घोड़ों में एड़ लगाई गई। टापों का शब्द सुनाई देने लगा और धूल पृथ्वी से उठकर आकाश में छा गई।

दूसरी तरफ ठाकुर साहब और प्रेमचन्द आने वाले तूफान का इन्तजार कर रहे थे। सन्यासी जी अपनी समाधि में मग्न थे। घोड़ों की टापों के शब्द सुनाई देने लगे और स्वामी जी की कुटिया के सामने रुके। प्रेमचन्द घबरा गया। ठाकुर साहब का दिल धड़कने लगा। अपने को ब्रह्म समझने वाले ठाकुर साहब "ईश्वर", "ईश्वर" पुकारने लगे। ईश्वर को न मानने वाला प्रेमचन्द "भगवान", "भगवान" पुकारने लगा। दोनों का शब्द एक साथ निकला "रक्षा करो, भगवान रक्षा करो।"

सन्यासी जी के कान में शब्द पड़ा। उन्होंने आँखें खोलीं और कहने लगे, "भाई तुम ईश्वर को नहीं मानते फिर "ईश्वर, ईश्वर" क्यों पुकारते हो और ठाकुर साहब तुम तो स्वयं ही ब्रह्म हो। जोर लगाओ यह तो सब स्वप्न है, यह तो सब मिथ्या है। आँखें खुल जावेंगी। गोपी लड़की ने डाकुओं की शक्ल देखी तो दिमाग़ चकरा गया। स्वामी जी की कुटिया की तरफ भागने लगी परन्तु स्वामी जी ने उसे वहीं रोक दिया और धैर्य दिया कि तेरा भाग्य अब जागने वाला है क्यों घबराती है। दो चार रोज बाद फिर सब यहाँ आकर मिलेंगे।

डाकुओं ने रकाब से पैर नीचे रक्खा और कुटिया की तरफ देखा तो बड़े आश्चर्य में पड़ गये। उन्होंने देखा कि सरदार की

लड़की गोपी भी वहाँ मौजूद थी। डाकुओं ने आपस में सलाह करके गोपी को अपने कब्जे में किया और उसके घर भेज दिया तथा ठाकुर साहब और प्रेमचन्द को सन्यासी जी सहित रस्सियों में बाँध दिया और उन तीनों को संगीनों की नौक पर रख लिया गया। एक डाकू आगे चलता था और यह तीनों व्यक्ति दूसरे डाकुओं के संरक्षण में पीछे चले जा रहे थे। सन्यासी जी इन दोनों को तसल्ली देते जाते थे। डाकुओं ने नर्वदा के किनारे एक ढाह तलाश की और वहीं से खड़े होकर अपने सरदार का बदला लेने की गरज से तीनों को नदी में फेंक दिया।

हृदय परिवर्तन

डाकुओं के सरदार की लड़की गोपी डाकू की देखभाल में घर को चली गई। मार्ग में डाकू उसके पिता के वध का हाल बराबर पूछता रहा मगर गोपी कुछ उत्तर न देकर बेचैनी के साथ अपना सफर तय करती रही। कभी ख्याल आता कि घर पहुंचकर माँ क्या कहेगी, कभी प्रेमचन्द के प्रेम में साँस भरती थी। उधर सन्यासी जी की बात में उसकी श्रद्धा काफी हो गई थी। उसको वही बात तसल्ली देती थी कि तुम्हारा कुछ बिगड़ने वाला नहीं है। आखिर घर पहुँची। सरदार की स्त्री पहले ही पुलिस के भय से घर छोड़कर कहीं चली गई थी। इधर यह डाकू भी पुलिस के भय से घबरा रहा था। वहाँ से छिपकर कहीं चला गया। लड़की ने दिन बिताया। रात भर करवटें बदलती सोचती रही कि इन डाकुओं से कैसे पीछा छूटेगा। ठाकुर साहब और प्रेमचन्द पर क्या बीती होगी। फिर एक तदवीर समझ में आई कि पुलिस में रिपोर्ट करके अपने पिता के भेदों को खोलकर सब डाकुओं को पकड़वा दिया जाये। अतः प्रातःकाल होते ही उसने रिपोर्ट करके कुछ डाकुओं को उनके घर जगल में गुप्त स्थान पर पकड़वा दिया।

पुलिस ने अपनी खोज जारी रक्खी और एक-एक करके सभी डाकुओं को पकड़ लिया। इस प्रकार गोपी ने इन डाकुओं के भय से अपने को मुक्त कर लिया तथा ठाकुर साहब और प्रेमचन्द को भी आगे आने वाली आपत्तियों से बचा लिया।

भगवान की बातें अजीब होती हैं। बुरे काम का परिणाम बुरा और अच्छे काम का परिणाम अच्छा ही हुआ करता है। देर जरूर हो जाया करती है। जीव को मरने के बाद ही तीन बातें ईश्वर की तरफ से मिला करती हैं। १. आयु, २. योनि, ३. भोग। जिसके भगवान सहायक हों उनको कौन मार सकता है और जिसका समय आ गया है उसे जीवित कौन रख सकता है।

सन्यासी जी, ठाकुर साहब और प्रेमचन्द तीनों नर्बदा नदी में गिरकर ऊपर को उछले तो सन्यासी जी ने सहारा दिया और जोर से आवाज लगाई "कमर तख्ता बना लो, पानी पर चित्त लेट जाओ, साँस धीरे-धीरे निकालो, आसमान की ओर को दृष्टि रक्खो और शरीर को ढीला कर लो। इस प्रकार तुम अपनी नाव स्वयं ही बन जाओगे।" ठाकुर साहब और प्रेमचन्द दोनों ही अच्छे तैराक थे। स्वामी जी के कहने पर उनका साहस और बढ़ गया। उस समय स्वामी जी के वचन में श्रद्धा रखने के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता था। चाहे उनमें से कोई ब्रह्म बन गया हो या नास्तिक बन गया है।

जब चारों तरफ अंधियारा हो, आशा का दूर किनारा हो,
और कोई न खेवन हारा हो, तो तू ही बेड़ा पार करे।

सिवाय भगवान के और कुछ न सूझ रहा था। स्वामी जी ने प्राणायाम करके और अपनी भुजाओं में संयम करके रस्सी के फन्दे तोड़ दिये और दोनों को सहारा तथा दिलासा देने में लग गये। दोनों जब साँस आज्ञा देता था 'ओ३म्, ओ३म्' का उच्चारण

करते जाते थे। एक अजीब दृश्य निगाह के सामने खेल रहा था
हवा पानी के साथ मिल-मिल कर तरंगें उठा रही थीं मानो धीमा
धीमा यह राग अलाप रही हो।

दुःख सुख के सागर में पड़कर,
आश निराशा की लहरों पर
डूबत तैरत जावत नैया।
चिन्ता क्या भगवान खिवैया॥

प्रेम दिलों में, हित भगवन में,
बढ़े चलो धीरज धर मन में,
कर ही देंगे पार खिवैया॥
चिन्ता क्या भगवान खिवैया॥

ओह भगवन्, आपकी अजीब शान है। अगर डूबतों को
सहारा देना था तो सन्यासी जी को भी उन दोनों के साथ बंधवा
दिया। सन्यासी जी के किसी भोग का फल भी दे दिया और दो
गरीब बेगुनाहों के बचाने का सामान भी जुटा दिया। स्वामी
जी ने आवाज लगाई "घबराओ नहीं, आगे एक नाव जा रही है।
तुम्हारा संकट शीघ्र ही कटने वाला है।

केवट ने दूर से देखा कि एक नहीं तीन लाशें पानी पर तैरती
आ रही हैं। उसके मन का चाव बढ़ा। पतवार जल्दी-जल्दी लगाई
और लाशों के समीप आ पहुंचा। सन्यासी जी ने आवाज लगाई
"अरे क्या देखता है रस्सा फेंक, हम तीनों में से एक का भी अभी
यमराज के दरबार में बुलावा नहीं आया है।" केवट ने रस्सा
फेंका और स्वामी जी की मदद से दोनों, ठाकुर साहब और
प्रेमचन्द नाव पर चढ़ गये। स्वामी जी महाराज ने केवट से हाथ
पकड़वाया और "ओ३म् ओ३म्" कहते हुये सभी नाव पर चढ़
कर किनारे आ लगे। रात्रि का समय था, चाँदनी खिल रही थी।

सभी ने केवट की झोंपड़ी पर विश्राम किया। काफी थकान हो
चुकी थी। नींद ने घेर लिया। नींद भी भगवान ने कैसी प्यारी
वस्तु बनायी है। यदि यह न होती तो जीव चिन्ता में घुल घुल
कर मर जाता। कैसी ही आपत्ति मनुष्य पर आई हो यह नींद ही
उसको आपत्ति में सहायक होती है। ईश्वर का धन्यवाद है कि
जीवों के लिये कैसे-कैसे उपकार किये हैं।

प्रकृति

ईश्वर यदि सच्चिदानन्द है और भवसागर से पार लगाने
वाला है तो मनुष्य भी सत् चित् है ही। यह भी केवट की भाँति
कम से कम नदियों और झीलों से तो पार लगाता ही है। फि
आज तो हमारे केवट भी तीन प्राणियों की सेवा में लगे दिखा
देते हैं। नींद पूरी करने के बाद तीनों प्राणी जागे, केवट ने कु
खाने को बना रक्खा था। उनके सामने लाकर रख दिया। भू
थे ही, जैसा भी था बड़े प्रेम से खाया। हाय इस भारतवर्ष व
दशा अब कैसी हो गयी। हमारे धर्म का एक अंग नित्य कम
अतिथि सत्कार भी है जो अब लुप्त होता चला जाता है। फिर भ
गरीब और ग्रामीणों में यह अभी बहुत कुछ शेष है। पैसे वाले त
आज कल उसी का सत्कार करते हैं जिस से कुछ काम निकलत
हो। हज़ारों दावतें, पार्टियाँ प्रतिदिन होती रहती हैं, पर
मौहताजों की स्वार्थ रहित सेवा करना आज कल के सभ्य कहला
वालों के लिये एक स्वप्न भाव होता जा रहा है। केवट को धन्य
वाद देकर तीनों अपनी कुटी की ओर चल दिये। जब कुटी प
पहुँचे तो पुलिस और गोपी को वहाँ पाया। पुलिस खोज करने
लिये गोपी को वहाँ ले गयी थी। वह बड़ी निराशा में थी अ
उसका मुँह सूख रहा था। प्रेमचन्द को जब देखा तो हर्ष से मु

हो गई। पुलिस सबका बयान लेकर चली गई और गोपी वह रह गई।

ठाकुर साहब : लो अब तुम्हारा क्या इरादा है। हम को तो अब घर याद आ रहा है। नई दुलहन न जाने अपने पीहर गई होगी या नहीं। कुँवर साहब का क्या हाल होगा। हम को न मालूम कहां तलाश कर रहे होंगे।

प्रेमचन्द : ठीक है ठाकुर साहब, गृहस्थी को तो घर की चिन्ता लगी ही रहती है। मगर यह मौका भी बार बार हाथ नहीं आता। मेरी नास्तिकता तो नर्बदा में गोता लगाते ही जाती रही और शायद आप भी ब्रह्म बनना भूल गये। अब तो प्रकृति के सम्बन्ध में मालूम करूंगा और अभीष्ट उद्देश्य क्या होता है उस की गुत्थी सुलझा कर चलने का इरादा है। मेरे विचार में आप भी ऐसा ही करना पसन्द करेंगे।

ठाकुर साहब : हाँ अब डाकुओं का भय तो जाता रहा है। एक दिन और सही, कुछ ज्ञान ही होगा।

प्रेमचन्द : स्वामी जी महाराज, क्या कृपया आप यह बतायेंगे कि ईश्वर इस संसार की रचना क्यों करता है और क्यों यह झमेला फैलाता है ?

सन्यासी : सब से पहली बात यह है कि जो वस्तु अपना अस्तित्व रखती है वह प्रकट जरूर होगी वरना उसका अस्तित्व बेकार है। और जो वस्तु होती है उसमें गुण जरूर होते हैं। यदि गुण न हों तो उसका कोई अस्तित्व नहीं है। ईश्वर में उत्पति, स्थिति और प्रलय उसके स्वभाविक गुण हैं। ये गुण तभी प्रकट होते हैं जब सृष्टि की रचना होती हो। दूसरे यह कि जीव और प्रकृति भी अस्तित्व रखते हैं। इनका अस्तित्व तभी सम्भव हो सकता है जब कि माद्दा (मैटर) उसकी आरम्भिक दशा से अव्यक्त अर्थात्

रमाणुओं की अव्यक्त दशा से महसूस करने वाली शक्ल में प्रकट ो और जीव भी जो अणु और अल्पज्ञ है उसका भी अस्तित्व तभी कट हो सकता है जबकि वह शरीर धारण करे वरना ऐसे जीव ा भी अस्तित्व प्रकट नहीं हो सकता। अतः तीनों ही बातें अर्थात् उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय ईश्वर के चेतन्य अर्थात् करना, न करना तथा उल्टा करने की शक्ति से हमेशा होती रहती है। चूंकि ईश्वर हमेशा से है। जीव और प्रकृति भी हमेशा से अपना अस्तित्व रखते है, और हमेशा रहने वाली वस्तु कभी नाश को प्राप्त नहीं होती। लिहाजा यह तीनों चीजें हमेशा से रहती हुई हमेशा रहेंगी। इन्हीं तीनों के कारण सृष्टि का यह प्रवाह अनादि-काल से चला आ रहा है।

प्रेमचन्द : फिर भी ईश्वर सृष्टि को पैदा करते हैं तो इस के पैदा करने का कोई उद्देश्य भी होता ही होगा ?

सन्यासी : हाँ हाँ उद्देश्य तो है ही। ईश्वर आनन्द स्वरूप है और जीव आनन्द से रहित है। हरेक पिता अपनी सन्तान के लिये यही चाहता है कि अपनी सन्तान को अपने से अधिक सुखी, धनी और विद्वान बनावे। जीव अल्पज्ञ है। उसकी यही इच्छा रहती है कि हर एक बात को जाने और यह भी चाहता है कि उसे हमेशा आनन्द मिलता रहे। ईश्वर अपने दयालु स्वभाव से जीवों को ज्ञान देकर आनन्द रूप बनाने के लिये यह सृष्टि की रचना करता है। आनन्द स्वरूप होना ही जीव का चरम लक्ष्य है उसी की प्राप्ति के लिये जीव सतत प्रयत्न में लगा रहता है।

प्रेमचन्द : फिर दुनियाँ में माया जाल क्यों फैलाया गया है जो हर एक चीज़ जीव को अपनी ओर खींचती है ?

सन्यासी : ईश्वर दयालु रूप है। उसकी सभी बातों में दया का प्रकट होना जरूरी है। जीव का अन्तिम लक्ष्य आनन्द स्वरूप होना

जरूर है परन्तु ईश्वर में जो गुण माद्दे (प्रकृति) से जो फल फू रस, स्वरों की कोमलता, अत्यन्त सौन्दर्य और सबसे बड़ा का आनन्द पैदा करने का गुण इत्यादि मौजूद है इस से जीवों को क्य वंचित कर देता। भगवान् अपनी दया से जीवों को लोक औ परलोक का सभी सुख देते हैं।

प्रमचन्द : तो यह मनुष्य से अतिरिक्त जो दूसरी योनियाँ बनायं हैं उस से तो ईश्वर का जुल्म जाहिर होता है। क्या उनके लिये दया ईश्वर के पास नहीं रहती ?

सन्यासी : स्वभाव किसी का नहीं बदला करता। ईश्वर के गुणों में कभी परिवर्तन नहीं होता। मनुष्य के अतिरिक्त दूसरी योनियाँ भी ईश्वर की दया का ही फल है। दयालु भगवान् ने तीन प्रकार की योनियाँ बनाई हैं। कर्म योनि, भोग योनि और उभय योनि जब मनुष्य का पिछला भोग नहीं रहता तो वह दुनियाँ के आरम्भ में और माँ बाप के संयोग के बिना मोक्ष से लौटे हुए जीव अपनी जवानी की दशा में बिना गर्भ के पैदा होते हैं। जैसे खटमल, जूँ, बीर बहूटी इत्यादि। इसी प्रकार मनुष्यों को मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ आदि औजार और शरीर आनन्द की प्राप्ति के लिये ईश्वर अपनी दया से देते हैं और उनकी बुद्धि के विकास के लि वेद अर्थात् ज्ञान को प्रकट करते हैं ताकि उनसे यह मनुष्य ज्ञा बढ़ाकर आनन्द स्वरूप हो जावें। यह कर्म योनि है। परन्तु ज जीव ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध अपनी इन्द्रियों का अनुचित प्रयो करके अपने औजारों को खोटा बना लेता है तो दोबारा औजार के देने की जरूरत पड़ जाती है। फिर वे माँ-बाप के संयोग से पैदा किये जाने लगते हैं जिसमें पिछला भोग, आयु आदि ईश्वर की ओर से मिला करती है। इस योनि में पिछले भोग भोगना और भविष्य में आनन्द की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना होता है।

यह उभय योनि है। तीसरी भोग योनि है. मनुष्य के अतिरिक्त अन्य सब योनियां भोग योनि हैं।

यह भोग योनि भी ईश्वर की दयालुता है। जब मनुष्य पाप कर्म से अपनी बुद्धि इस सीमा तक खराब कर लेता है कि उसको पाप कर्म करने में तनिक भी सकोच नहीं होता तो भोग बढ़ता ही जाता है। तब ईश्वर उसकी कुबुद्धि पर रोक लगाकर उसको आगे कर्म करने के लिये रोक देता है और अपनी दयालुता से ऐसा शरीर उनको देता है जिसमें वे अपनी सजा को भोग भी लें और ईश्वर के न्याय का परिचय भी मिल जाता है। अर्थात् यदि किसी को डन्डे से पीटने की सजा मिलती है तो गधे का शरीर दे देते हैं और उसकी खाल भी मोटी कर देते हैं ताकि वह पिटने को आसानी के साथ सहन कर सके।

प्रेमचन्द : अच्छा तो ईश्वर दुनियां को किस सिलसिले से बनाता है ?

सन्यासी : यह समस्त विश्व कार्य रूप है। उसका नाश होना जरूरी है। काल एक ही है। उसके विभाग का हिसाब ज्योतिष के ग्रन्थों से मालूम होगा। एक सृष्टि जब से बनती है और कायम रहती है जब तक एक ब्रह्मा का दिन होता है। इस ब्रह्मा के दिन में सूर्य और चन्द्रमा के हिसाब से कितने ही युग, मन्वन्तर, वर्ष, मास, दिन इत्यादि हुआ करते हैं और जब से यह सृष्टि बिगड़ने लगती है और दोबारा बनकर काम के योग्य होती है तब तक को अर्थात् प्रलय के समय को ब्रह्मा की रात्रि कहते हैं। जब इसका समय आयेगा मिट्टी पानी में घुलने लगेगी। पानी आग से भाप बन जायेगा, भाप हवा में मिलकर और समस्त आकाश में फैलकर गैस की दशा में बदल जायेगी और फिर वह अव्यक्त दशा होती चली जायेगी और आखिरकार प्रकृति रूप अर्थात् सत, रज, तम

की दशा को प्राप्त हो जायेगी । इस प्रकार वियोग होते-होते फिर 'ईश्वर इन परमाणुओं में संयोग शक्ति उत्पन्न करेगा । उस समय सबसे प्रथम मन बनेगा, दूसरी दशा अहंकार की होगी, फिर पाँच भूत सूक्ष्म हालत में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध क्रमशः बनते चले जायेंगे जिनसे एक ओर पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियां बनकर दूसरी तरफ पाँचों तत्व शनैः शनैः स्थूल होते चले जायेंगे। आकाश में गोले बनेंगे और पृथ्वी पर फल, फूल, नदी, समुद्र, घास, फूंस, अन्न पैदा होने लगेगा तब जीवों की उत्पत्ति होगी।

प्रेमचन्द : ईश्वर और जीव परस्पर कैसे रहते हैं ?

सन्यासी : जो सूक्ष्म वस्तु होती है वह अपने से अधिक स्थूल में प्रवेश कर जाती है। परन्तु सूक्ष्म वस्तु में बड़ी वस्तु नहीं प्रवेश कर सकती और न उस सूक्ष्म वस्तु के गुणों पर प्रभाव डाल सकती है जैसा कि आकाश शेष चार तत्वों में समाया हुआ है। इसलिये शब्द जो आकाश का गुण है सब स्थान पर पाया जाता है। वायु शेष तीनों तत्वों में समाई हुई है। वायु का गुण स्पर्श है। अग्नि जल और मिट्टी में समाई हुई है। इसका गुण रूप है और इसी कारण से हवा और आकाश में रूप नहीं होता। जल पृथ्वी में समाया हुआ है। इसका गुण रस है और मिट्टी का गुण गन्ध है। चूँकि पृथ्वी में अन्य चारों तत्व समाए हुए हैं इसलिये पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पाँचों गुण पाये जाते हैं।

इन सबसे सूक्ष्म जीव है और सबसे अत्यन्त सूक्ष्म ईश्वर है। अर्थात् ईश्वर जीव और प्रकृति दोनों के भीतर व्याप्त है। ईश्वर द्वारा प्रकृति के स्थूल रूप प्राप्त करने पर जीव सूक्ष्म होने से प्रकृति में व्याप्त हो जाता है और ईश्वर द्वारा निर्माण किये गये पदार्थों से अपने ज्ञानानुसार काम लेता है। प्रकृति पर आंशिक रूप से नियन्त्रण रखता है और ईश्वर की निर्माण की हुई वस्तुओं से काम लेता है।

प्रेमचन्द : जब जीव चेतन है तो इन प्राकृतिक तत्वों की ओर क्यों दौड़ता है ?

सन्यासी : प्रकृति से चूंकि पाँच तत्त्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश बने हुए हैं और ज्ञानेन्द्रियाँ भी अर्थात् कान आकाश से, त्वचा वायु से, नेत्र अग्नि से, रसना जल से और नाक पृथ्वी से बनी है। इसलिये इन ज्ञानेन्द्रियों का सम्बन्ध इन पांच भूतों से है। कान केवल आकाश के गुण शब्द को ग्रहण करते है। त्वचा केवल वायु के गुण स्पर्श को ग्रहण करती है। नेत्र अग्नि के गुण रूप को और जिह्वा केवल जल के गुण रस को और नासिका केवल पृथ्वी के गुण गन्ध को ग्रहण करती है। सिद्धांत केवल यह है कि निर्मित वस्तुएँ अपने-अपने कारण की ओर झुकती है। जो वस्तु जिससे बनी है उसी की ओर चलती है। घड़ा मिट्टी में मिलता है और जल बहकर समुद्र की ओर को जाता है। अग्नि ऊपर उठकर सूय की ओर को जाती है। वायु आकाश की तरफ फैलती है इसलिये पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ अपने पाँच कारण अर्थात् भूतों के भोगने की ओर झुकी रहती हैं। जिससे इन इन्द्रियों की तृप्ति होती रहती है। यदि वास्तविक रूप से देखा जाय तो कुछ देर के लिये इन्द्रियों की तृप्ति से सुख अनुभव हो जाता है परन्तु स्थाई रूप से स्थाई आनन्द जिसको कहा जाता है वह इनमें नहीं है बल्कि सुख के साथ दुःख भी लगा रहता है।

प्रेमचन्द : यह सुख-दुःख और आनन्द क्या वस्तु है ?

सन्यासी : मैं एक उदाहरण देकर स्पष्ट करता हूँ। शरीर एक रथ है जिसमें आत्मा सवार है। इस रथ का सारथी बुद्धि है जिसके हाथ में लगाम है। यह लगाम मन है इसमें पांच घोड़े जुते हुए हैं। यह घोड़े पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और जिन मार्गों पर गमन करना है वे मार्ग भी पाँच हैं। कान का घोड़ा शब्द रूपी मार्ग पर दौड़ता

चाहता है। त्वचा का घोड़ा स्पर्श की सड़क पर दौड़ लगाना चाहता है। रसना का अश्व रस की सड़क पर दौड़ना चाहता है और इसी प्रकार नासिका का अश्व अपनी गन्ध की सड़क पर दौड़ रहा है और आत्मा को इन पाँचों सड़कों पर भगाये फिरता है। एक पल के लिये भी चैन नहीं लेने देता। इन ज्ञानेन्द्रियों के अश्वों की लगाम मन है और यह लगाम बुद्धि के हाथ में है। मन की लगाम एक समय केवल एक ही घोड़े से मिलकर काम करती है। बस बुद्धि और मन कभी किसी घोड़े की लगाम ढीली कर देते हैं कभी किसी की और ईश्वर का आनन्द जो इसके अन्दर व्याप्त है उसे अनुभव नहीं करने देते। परिणाम यह होता है कि आत्मा मन और इन्द्रियों की तृप्ति में ही सुख अनुभव करने की आदी हो जाती है।

प्रेमचन्द : मन का क्या स्वभाव है ?

सन्यासी : मन का स्वभाव चंचल है। वह एक वस्तु को प्राप्त करके दूसरी वस्तु की ओर दौड़ता है। जिस वस्तु से उसे सुख मिला है उसे प्राप्त करते का प्रयत्न करता है और जिस वस्तु से उसे दुःख मिलता है उससे घृणा करता है। इसी से राग द्वेष पैदा [illegible]र प्रवृत्ति पैदा होती है जिससे भोग बन जाता है और जन्म-मरण के चक्कर में उस समय तक इस जीव को डाले रखता है जब तक कि वह इस मन की वृत्तियों का निरोध करके आनन्द की प्राप्ति नहीं कर लेता। मन में स्मरण शक्ति जागृत होकर इससे एक वृत्ति निकलती है कि जैसा उसको पहले अनुभव हो चुका है कि जिससे उसे कुछ सुख मिला था, वह उसको फिर चाहता है। यही वृत्ति इन्द्रियों के द्वारा बाहर निकल कर उसी मार्ग से वापिस चली जाती है और फिर स्मरण दिलाती है। इसी प्रकार से सहस्रों. लाखों वृत्तियाँ उत्पन्न होकर दुनियाँ की बातों से चैन नहीं लेने देतीं।

प्रेमचन्द : तो फिर कर्मों से बन्धन पैदा हुआ। यदि कर्म ही न किये जावें तो फिर क्या हो ?

सन्यासी : आत्मा का गुण प्रयत्न होने से जीव कर्म करने से रुक नहीं सकता। फिर कर्म जड़ हैं यह चेतन को नहीं बांध सकते। कर्म तो केवल गिनती में पाँच हैं अर्थात् ऊपर को चलना, नीचे को चलना, बराबर चलना, फैलना और सुकड़ना। यह पांचों कर्म क्रमशः अग्नि, जल, वायु, आकाश और पृथ्वी में रहते हैं। कोई कर्म पाप है न पुण्य। जो कर्म एक समय में पुण्य समझा जाता है दूसरे समय में पाप गिना जाता है। जैसे एक आदमी को मारना पाप है मगर योगेश्वर श्री कृष्ण जी ने गीता का उपदेश देकर लाखों जीवधारियों को समाप्त करा दिया। जीवात्मा तो केवल अपनी नियत का ही जिम्मेदार है। नियत से ही पाप-पुण्य बना करते हैं।

प्रेमचन्द : अच्छा तो जब ईश्वर सभी जीवों में व्याप्त है तो ईश्वर दिखाई क्यों नहीं देता।

सन्यासी : समीप होते हुए भी वस्तु दिखाई नहीं दिया करती। जबकि ईश्वर इस कदर समीप है फिर भी दूर हो जाया करता है।

प्रेमचन्द : समीप होते हुए भी वह कैसे दूर हो जाता है और जब वह जीव के अन्दर और बाहर मौजूद है तो ईश्वर का आनन्द जीव को हर समय क्यों नहीं मिलता।

सन्यासी : दूरी तीन प्रकार से हुआ करती है। १. फासले की दूरी, यह दूरी तो सब ही जानते हैं जैसे लंका से हिमालय पर्वत २००० मील है। २. समय की दूरी, जैसे कोई कहे कि उस बच्चे की आयु अभी तीन वर्ष है उसकी शादी बीस साल बाद होगी अभी दूर पड़ी है या ईसा मसीह १९६६ साल पहले पैदा हुए थे। वह हम से १९६६ साल दूर हो चुके। ३. मन की दूरी, जैसे कोई व्यक्ति

किसी हिसाब-किताव में लगा है या किसी गहरे ख्याल में मस्त तो उसके सामने बरात तक निकल जाती है उसको मालूम त नहीं होती कि क्या हो रहा है। कारण यह है कि मन एक सम में एक इन्द्री के साथ काम करता है। यह मन दसों इन्द्रियों से किसी न किसी के साथ दिन रात लगा रहता है तो फिर ईश्व का आनन्द कैसे भोगे क्योंकि वह तो हरदम प्राकृतिक विषयों ही फँसा रहता है। परन्तु जव मन सुषुप्ति में रुक जाता है त ईश्वर का आनन्द भोगता है। यह हम पहले ही वता चुके हैं कि सुषुप्ति, समाधि और मोक्ष में जीव की ब्रह्म-रूपता हो जाया करती है।

प्रेमचन्द : जीव का बन्धन कैसे हो जाता है ?

सन्यासी : बन्धन अविद्या या अविवेक से होता है।

प्रेमचन्द : अविद्या क्या होती है।

सन्यासी : विद्याएँ तीन प्रकार की होती हैं। १. सत्य विद्या, २. विद्या, ३. अविद्या। सत्य विद्या ईश्वर, जीव, प्रकृति के ज्ञान प्राप्त करने को कहते हैं जिससे आनन्द की प्राप्ति हो। दूसरी विद्या जो सांसारिक बातों के बारे में ज्ञान देती है जैसे ज्योतिष, गणित और आयुर्वेद इत्यादि। तीसरी अविद्या जिससे उल्टी बात जानी जाती है। यह अविद्या चार प्रकार की होती है। १. पवित्र को अपवित्र समझना और अपवित्र को पवित्र समझना जैसे शरीर जो गन्दी चीज़ों से भरा है उस पर अभिमान करना या उस पर मोहित होना। २. दुःख को सुख और सुख को दुःख समझना जैसे सन्तानोत्पत्ति में हर्षित होता है। एक बच्चा होने पर ही कितना उत्तरदायित्व माता-पिता पर आ जाता है और कितना कष्ट माता-पिता को सहन करना पड़ता है, परन्तु ईश्वर उपासना और ज्ञान प्राप्ति को वह कष्ट समझता है। ३. जड़ को चेतन

समझना और चेतन को जड़ समझना। जैसे ईश्वर जो निराकार चेतन-स्वरूप है उन्हें मूर्तिमान् समझता है और अपना शरीर जो जड़ है उसको चेतन समझता है। ४ नित्य को अनित्य और अनित्य को नित्य समझना, जैसे दुनियाँ के सभी पदार्थ अनित्य हैं उनको नित्य समझता है और जीवात्मा जो अमर है उसके लिये शोक करता है।

जीवात्मा चूँकि अल्पज्ञ है। प्राकृतिक वस्तुओं के भ्रम में पड़ कर इन्हीं चार प्रकार की अविद्याओं के बन्धन में बँधा रहता है।

प्रेमचन्द : क्या कहूँ स्वामी जी महाराज, मेरी श्रद्धा आपके चरणों में हो गई है। मैं भी सन्यासी होना चाहता हूँ।

सन्यासी : अच्छा यह तो बताओ इस लड़की का तुम क्या करोगे जो तुम्हारे साथ चली आई है।

ठाकुर साहब यह हमारी बिरादरी की है। गाँव में जाकर इसका विवाह करेंगे।

प्रेमचन्द के सन्यासी होने और अपनी शादी गाँव में जाकर हो जाने की बात सुनकर गोपी पर एक वज्रपात सा हो गया। वह फौरन कहने लगी "मैं भी सन्यासी का जीवन पसन्द करती हूँ।"

सन्यासी : ओह हो, सभी सन्यासी होने लगे। क्या सन्यासी बनना सुगम समझ लिया है। पीले वस्त्र धारण कर लिये और रोटी माँग-माँग कर खाने लगे। ऊटपटाँग शब्द "नारायण हरि", "आत्मा सो परमात्मा" कहने लगे। सहस्त्रों वर्षों के संस्कार जो मन पर पड़े होते हैं और मन पर चिन्ह बना लेते हैं वे एक दिन में नहीं मिट सकते। चित्त की वृत्तियाँ, स्मरण दिला-दिलाकर ही इच्छाएँ उत्पन्न करती रहती हैं। वे एक दिन के उपदेश से समाप्त नहीं हो सकतीं। इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल होती है; जहाँ

चार आश्रमों का सिलसिला रक्खा गया है वहाँ आयु का ख्याल रक्खा गया है।

२५ वर्ष तक विद्या अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त करें तब इस योग्य होता है कि वेदोक्त कर्म करे। यदि इन २५ वर्षों वैराग्य हो जावे तो सन्यास ले सकता है। वरना गृहस्थाश्रम प्रविष्ट होकर वेदोक्त कर्म करे जिससे पूर्व जन्म के संस्कारों शुद्धि होती है। मन पर जो मल, विक्षेप तथा आवरण आये हो हैं वे वेदोक्त निष्काम कर्म करने से दग्ध होते जाते है।

५० वर्ष की आयु के बाद चित्त की वृत्तियों का योग साधन से विरोध करके ईश्वर की साक्षी का अनुभव करे। जब जीवन मुक्त की दशा हो जावे तब सन्यास लेकर अपना अनुभव दूसरे पर प्रकट करे और जन्म-मरण के बन्धन से छुटकर आनन्द-स्वरूप हो जाय।

अभी और ज्ञान प्राप्त करो। तब ईश्वर में दृढ़ता आवेगी और लड़कियाँ तो सन्यास ले ही नहीं सकतीं। भगवान ने इनको मातृ-शक्ति पुरुषों से अधिक दी है। जब ईश्वरीय नियम के अनुसार नियत समय पर स्त्रियों के भाव उत्तेजित होते हैं तो उनको बेचैन होना पड़ता है। इसलिये ५० वर्ष की आयु तक अनुभव प्राप्त कर जब वैराग्य उत्पन्न हो और उत्तेजना शान्त हो जाय तब सन्यास का नाम लेना।

सन्ध्या हो चुकी थी। सन्यासी के सन्ध्या-वन्दन का समय आ चुका था। सन्यासी जी ने छुट्टी चाही और अपने नित्य कर्म में संलग्न हुए। इधर प्रेमचन्द और ठाकुर साहब ने शेष समय वार्तालाप में व्यतीत किया।

गृह-दाह

दुनिया की यात्रा करते-करते सूर्य थक गया। दुनियावालों के गुनाहों से लज्जित होकर मुंह छिपाने के लिये पृथ्वी की पश्चिम दिशा में लुप्त हो गया मगर हे पाठकगणों, तुम सन्यासी जी के ज्ञानोपदेश के नशे में ऐसे मस्त हो गये कि आपने विक्रमपुर का ख्याल तो बिल्कुल ही दिल से भुला दिया। क्या तुमको यह मालूम नहीं हुआ कि कुँवर साहब की विदेश यात्रा में क्या घटना घटी। आह ! नेत्र वालों के लिये यह दुनियाँ नसीहत (शिक्षा) की जगह है। आन की आन में बड़े-बड़े सम्राट धूल में मिल गये। बड़े स्वाभिमानियों का जिनको अपनी मूंछ पर ताव लगाने से हाथ को फुरसत नहीं मिलती थी उनका घमन्ड खाक में मिल गया। इस थोड़ी सी जिन्दगी में कैसे-कैसे जुल्म ढाये जाते हैं। भारत की अबलाओं पर इस समाज ने कैसे-कैसे अत्याचार किये हैं जिनका वर्णन करने से हृदय विदीर्ण होता है। लाखों की संख्या में विधवा बनाकर उनके सिर मूँडे गये। हजारों पतियों ने अपनी स्वार्थपरता से अपनी सती साध्वी पत्नियों को छोड़कर उनके जीवन को नारकीय बना दिया। कुँवर साहब की नई दुलहन भी ऐसे ही मरदूदों के अपमान का शिकार हो गई।

न रात्रि का भोजन ही बना है, न शाम की झाड़ू ही लगी है। तमाम सामान बेतरतीब पड़ा है। पलंग बिछा हुआ है। नई दुलहन कभी बैठ जाती है, कभी लेट जाती है, कभी करवटें बदलती है। कभी ठण्डी साँसें भरती है, कभी क्रोध के आसार (भाव) चेहरे पर दिखाई पड़ते हैं तो कभी बड़बड़ा उठती है। फिर जोशीले शब्दों में दाँत पीसकर चिल्ला उठती है।

"मैं अपने इरादों को नहीं बदल सकता, मैं नहीं रुकूँगा" नई दुलहन ने इस दिखावटी चमड़े पर दृष्टि रखने वाले कुँवर साहब

से अपने अपमान का बदला लेने का संकल्प कर लिया। एक लाठी उठा ली और उसके एक सिरे पर कपड़ा लपेटना शुरू किया फिर दो मिट्टी के तेल के टीन के कनस्तरों में से जो शादी में बच रहे थे लोटे भर-भर कर इधर-उधर डालना शुरू कर दिया। मशीन की तरह इधर-उधर काम हो रहा है। कपड़ा लिपटी हुई लाठी हाथ में उठाई और भगवान की याद में अपनी भुजाएँ फैला दीं। दोनों घुटने टेक कर ऊपर को मुँह किया कुछ मन में कहा और दियासलाई से लाठी पर लिपटे हुए कपड़े में आग लगा दी।

थोड़ी देर में चारों तरफ से धुँआ निकलना शुरू हो गया। लपटें आकाश से बातें करने लगीं। विक्रमपुर में हाहाकार मच गया। लोगों ने कुछ हाथ-पाँव मारे, मगर व्यर्थ। जो कुछ होना था वह हो चुका। ठकुरानी साहिबा गहरी नींद में सो रही थीं। शोर-गुल सुनकर आँखें खुलीं तो हैरान रह गईं। चारों तरफ को भागना शुरू किया मगर कहीं शरण नहीं मिली। आखिर एक दीवार पर चढ़कर दूसरी तरफ कूद पड़ीं और अपने पैरों के गट्टों ो भी तोड़ लिया।

ठकुरानी साहिबा के कहीं-कहीं जलने से देह में जलन हो रही थी। इनकी चीत्कार सुनकर गाँव के आदमी जमा हो गये और एक खाट पर डालकर पीछे मकान में ले चले। कुछ मरहम पट्टी की गई। दीवारों पर पानी डाला गया। बड़ी मुश्किल से दिन निकला मगर ईश्वर को यह मंजूर न था कि यहीं सब झंझट मिट जाता। आपत्ति कभी अकेली नहीं आती। साथ में इसकी सखियाँ भी आती हैं। एक डाकिया द्वार पर आवाज लगा रहा था, "ठाकुर रामसिंह साहब हैं।"

एक गाँव वाला : भाई, वह तो यहाँ नहीं हैं। उनकी ठकुरानी साहिबा हैं परन्तु वे भी तकलीफ में हैं।

पोस्टमैन : ठाकुर साहब कहाँ हैं ?
गाँव वाला : उनको डाकू लोग पकड़कर न जाने कहां ले गये हैं।
पोस्टमैन : उनके नाम का पत्र है। बड़े लाट साहब का आदेश है कि ठाकुर साहब को ही देना। यदि वे नहीं हैं तो उनकी स्त्री को ही दूँगा।
गाँव वाला : तो चलिये, आप अन्दर दे दें।

ठकुरानी साहिबा कष्ट से हाय-हाय कर रही थीं। कभी संज्ञाहीन हो जाती थीं। कभी चेतना आ जाती थी। पोस्टमैन अन्दर गया और पत्र ठकुरानी साहिबा के हाथ में दे दिया। पत्र अंग्रेजी में था उसे पोस्टमैन ने पढ़कर कहा।

पोस्टमैन : ठकुरानी साहिबा यह पत्र हवाई जहाज के बड़े अफसर का है। इसके सुनाते हुए मुझे बड़ा खेद हो रहा है।

ठकुरानी साहिबा का माथा ठनका और उन्होंने काँपती आवाज में कहा—"हे भगवान, ऐसा क्या लिखा है।"

पोस्टमैन : पत्र अंग्रेजी में है। इसका आशय यह है कि हवाई जहाज के बड़े अफसर साहब को बड़ा खेद है कि आपके पुत्र कुँवर चन्द्रसिंह ४ जनवरी को प्रातःकाल वायुयान की दुर्घटना से मृत्यु को प्राप्त हो गये और उन्होंने सहानुभूति प्रकट की है।

पत्र सुनते-सुनते दिल डूबने लगा, नाड़ी की गति धीमी पड़ गई। हाथ पैर अकड़ने लगे और देखते-देखते ही उनकी आत्मा शरीर छोड़कर परलोक को सिधार गई।

नई दुलहन पहले ही अपने को अग्नि के समर्पण कर चुकी थी और इस प्रकार एक बड़ी जागीर जो कुछ ही समय पूर्व अपनी तुलना नहीं रखती थी सर्वनाश को प्राप्त हो गई।

ता सहर वह भी न छोड़ी तूने वह बादे सबा,
यादगारे रौनके महफिल थी परवाने की —

सन्यासी से विदाई

विक्रमपुर में दुर्घटना के बाद दुर्घटना घटती ही चली ग
ठाकुर साहब के घर का दीपक बुझ गया। हवेली की कड़ियां
जलकर राख हो गईं। ठकुरानी जी का स्वर्गवास हो गया।
दुलहन अपने मैके वापिस जाने के बजाय ईश्वर के धाम में प
गई। रुपया, पैसा, जायदाद सब कुछ कुँवर साहब ने ऋण ले
समाप्त कर दिया। मगर वाह रे संसार! ठाकुर साहब अ
तक सन्यासी जी की कुटी पर प्रेमचन्द के साथ अपने घर
चिन्ता में मग्न हैं।

ठाकुर साहब : देखो प्रेमचन्द जी, ईश्वर जो कुछ करता है
अच्छा ही करता है।

प्रेमचन्द : वह कैसे?

ठाकुर साहब : देखो, यदि डाकू लोग हमें पकड़ कर साथ न ले जा
तो जो कुछ माल हम वापिस ले आये हैं वह कहाँ से मिलता
डाकू लोगों का नाश कैसे होता और सन्यासी जी का उपदेश भी

प्रेमचन्द : वाह वाह, यदि हमारे साथ डाकू लोग सन्यासी जी व
भी न बाँध लेते तो हमारी कौन सहायता करता।

ठाकुर साहब : अब तो घर की चिन्ता सवार है। ठकुरानी साहि
हमारी प्रतीक्षा कर रही होंगी। अब तो काफी रात हो चुकी है
सन्यासी जी से मालूम करें कि गाड़ी में कितनी देर है।

प्रेमचन्द : सन्यासी जी अपना अभ्यास समाप्त करके मंत्र उच्चारण
कर रहे हैं। आते ही होंगे। जो कुछ और शंका बाकी है वह भी
मालूम करके चलो।

थोड़ी देर बाद ही सन्यासी जी ने वहाँ आकर दर्शन दिये
और बोले—"क्या जाने का इरादा कर रहे हो। गाड़ी तो सुबह

पाँच बजे जावेगी। हम सड़क पर पहुँचा देंगे। वहाँ से तुमको स्टेशन के लिये लारी मिल जावेगी। उस समय तक यहीं आराम करो।

प्रेमचन्द : ठाकुर साहब को तो चलने की जल्दी पड़ रही है।

ठाकुर साहब : क्या करूँ घर की चिन्ता निकलती ही नहीं। मगर अब तो सुबह चार बजे रवाना होना है। थोड़ा सा वेदान्त के सम्बन्ध में और पूछ लूँ।

ठाकुर साहब : (सन्यासी जी से) आपके वेदान्त और जो मैंने पढ़ा है उसमें क्या अन्तर है ?

सन्यासी : यह जो आपने पढ़ा है, एक ब्रह्म ही ब्रह्म है बाकी सब मिथ्या है। इसका प्रचार करीब ढाई हजार वर्ष से चला है। इसीलिये यह नवीन वेदान्त या मिथ्यावाद कहलाता है। इसमें ऊपर से नीचे तक सहस्त्रों शंकाओं का निवारण नहीं मिलता। जैसे ब्रह्म चेतन से जड़ माया की उत्पत्ति कैसे होती है ? ब्रह्म जो अखण्ड और बेअंश वाला है उसके अंश कैसे मानते हो ? ब्रह्म निराकार है तो उसका प्रतिबिम्ब कैसे पड़ता है ? जब वह सर्व-व्यापक है और उसके अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु भी नहीं है तो उसका प्रतिबिम्ब किस वस्तु में पड़ता है ? यदि उस प्रतिबिम्ब को ही तुम जीव मानते हो तो ब्रह्म कैसे हुआ ? जब तक गुण और गुणी के बीच परदा नहीं आ सकता तो ब्रह्म और उसके गुण ज्ञान के बीच माया का परदा कैसे पड़कर ब्रह्म का जीव बन जाता है और जिसका आदि नहीं होता उसका अन्त भी नहीं होता तो जीव अनादि से बनकर अन्त वाला कैसे हो सकता है ? इत्यादि इत्यादि। कहाँ तक कहूँ, सभी ईश्वर के सिद्धांतों से गलत ही गलत है।

इन नवीन वेदान्तियों ने सूर्य में अंधकार पैदा कर दिया।

ज्ञान में अविद्या पैदा कर दी। अखण्ड खण्डित कर दिया। गु
और गुणी के बीच परदा ला दिया। अनादि अनन्त के सिद्धांतों
अनादि अन्तवाला कर दिया। सारांश यह है कि यह वेदान्त न
केवल मिथ्यावाद है जो सभी चीजों को मिथ्या बताता है।

ठाकुर साहब : अच्छा तो अपना वेदान्त कहिये।

सन्यासी : मेरा वेदान्त कुछ नहीं है। वेदों का अन्त यही है
ब्रह्म ही सब विश्व को पैदा करने वाला, स्थित रखने वाला औ
संहार करने वाला है। वह अद्वैत है कोई उसका दूसरा नहीं
जिससे जीवों की हस्ती सिद्ध और इन वेदों में जीवों के लि
उपदेश दिया है। सब चीज़ों का जो दुनियाँ में दिखाई देती
कारण एक अव्यक्त माद्दा (माया) है और जो चेतन शक्ति अर्था
मनमाना काम करना (करना, न करना, उलटा करना) इ
दुनियाँ में दिखाई देती है वह जीव है। इन दोनों में व्यापक ज
महान शक्ति ईश्वर या ब्रह्म है जिससे सब ही की सत्ता है औ
इसी ब्रह्म से या माद्दा (माया) प्रकट होता है और उसी से यह
जीव प्रकट होता है।

ठाकुर साहब : तो फिर नवीन और प्राचीन वेदान्त में क्या
अन्तर है।

सन्यासी : इसका यह तात्पर्य नहीं है कि ब्रह्म स्वयं ही जीव और
माद्दा (माया) बन जाता है बल्कि ईश्वर यदि परमाणुओं को न
मिलावे तो वह एक अव्यक्त दशा में पड़ा रहे और कैसे प्रकट हो।
यदि ईश्वर जीव को शरीर न दे तो कौन किसी को जान सके।
सारांश यही है कि वेदान्त यही है अर्थात वेदों का सारांश यह है
कि सबका आधार, सबका कर्त्ता, धर्त्ता वही एक अद्वैत ब्रह्म है।
प्रकृति अविकारिणी होने से उसका नाश नहीं होता और जीव भी
अनादि अविनाशी है।

ठाकुर साहब : प्रकृति में तो विकार होते रहते हैं फिर उसका नाश क्यों नहीं होता ?

सन्यासी : प्रकृति में विकार नहीं होता। विकार परमाणुओं की कमी बेशी को कहते हैं। प्रकृति में कोई गुण न अधिक होता है, न न्यून। बल्कि शक्ल बदल जाया करती है। जैसे लोटे में पानी की शक्ल गोल, फिर वही पानी थाली में चौड़ा और गिलास में ऊँचा दिखाई देता है। इस समस्त प्रकृति में न कोई चीज़ कम होती है न ज्यादा।

ठाकुर साहब : यह जो वेदान्त में ईश्वर को नेति-नेति कहकर बताया गया है वह ऐसा क्यों है ?

सन्यासी : ब्रह्म जो अति सूक्ष्म है और अनुपम है उसका समझना कठिन है उसकी भिन्नता अन्य वस्तुओं से अन्तर करके बताई गई है। ईश्वर ज्ञानेन्द्रियों से जो केवल पंचभूतों का ही ज्ञान प्राप्त करती हैं नहीं जाना जा सकता। अतः जो कुछ भी संसार में है उन सबसे अलग करके समझाया गया है कि जिसको तू देखता है वह ब्रह्म नहीं, जिसको तू सुनता है वह ब्रह्म नहीं है बल्कि जिसकी शक्ति से तेरी जिह्वा किसी शब्द को ठीक उसी नियुक्त स्थान से निकालती है, जहाँ से निकलने का नियम उसने बनाया है वह ब्रह्म है। जिसकी शक्ति से तेरी आँख और कान देखते और सुनते हैं वही ब्रह्म है।

ठाकुर साहब : अजीब बात है हम वैसे ही रहे।

सन्यासी : नहीं, नहीं, मार्ग सभी अच्छे है। इन्द्रियों का दमन बुरी बातों से बचना तो सभी मार्गों में बतलाया गया है। मगर मोक्ष ईश्वर के बताए हुए मार्ग के अतिरिक्त किसी अन्य मार्ग से नहीं मिलती।

ठाकुर साहब : क्या भक्ति मार्ग से मोक्ष नहीं मिलती। इस मार्ग में तो सभी नीच-ऊँच, पढ़े-बेपढ़े सभी तर जाते हैं। ईश्वर भी दर्शन देकर भवसागर से पार कर देते हैं और असुरों का वध करके समाप्त कर देते हैं।

सन्यासी : वेद में ईश्वर अजन्मा बताया है। फिर ईश्वर की बात कैसे गलत हो सकती है उसे या तो अजन्मा कहते हैं या जन्म देने वाला। यदि असुरों के वध करने के लिये जन्म लेते हैं तो असुर किसके पैदा किये हुए थे और किसने उनको जीवन दे रखा था। स्वयं ही पैदा करे और स्वयं ही मारे, यह अद्‌भुत तर्क है। ईश्वर का स्वभाव दयालु है। वह सब पर दया करते हैं। चाहे असुर हो चाहे भक्त। उनको न असुरों से द्वेष है न भक्तों से राग। वह उदासीन हैं। युद्ध करना, किसी को हराना किसी को जिताना, ईश्वर का काम नहीं है।

ठाकुर साहब : ईश्वर अपना चमत्कार दिखलाया करते हैं।

सन्यासी : चमत्कार. क्या नियम विरुद्ध कार्य करने से चमत्कार होता है। ईश्वर न्यायकारी भी है। आप ही किसी को गूंगा बनावे फिर जिह्वा देकर चमत्कार दिखलावें। आप ही लँगड़ा बना दें और फिर चमत्कार दिखाकर पहाड़ पर चढ़ा दें। क्या यह बातें ही चमत्कार दिखाने के लिये रह गई हैं क्या आपको यह चमत्कार नहीं दिखाई देता। हजारों तरह के मेवे, फल, फूल, धातु, रत्न, नदी, समुद्र, पर्वत, पृथ्वी, गृह, सूर्य, चन्द्र और फिर इनकी अटल गति। अनगणित लाखों ब्रह्मांड और सबको नियन्त्रण में रक्खे हुए हैं और किस प्रकार यह शक्ति काम कर रही है। मनुष्यों और पशुओं के जन्म से पूर्व उनके भोजन का प्रवन्ध करना, उनके अंगों का बनना और उनका सानुपात बढ़ना क्या आपको

कोई चमत्कार नहीं मालूम होता। ईश्वर मनुष्यों की भांति तमाशा नहीं दिखाया करता।

ठाकुर साहब : फिर भी तो बहुत से सन्तों को दर्शन हुए हैं। क्या यह गलत है ?

सन्यासी : गलत और सही कुछ नहीं कह सकते। मनुष्य की जब भावना बलवती हो जाती है तो जैसे रात्रि में स्वयं अपने विचारों को स्वप्न की दशा में देखता है वैसी ही भावना के प्रबल हो जाने पर दर्शन हो जाना सम्भव है। परन्तु दर्शन किसके होते हैं।

ध्यान करने ही वही तस्वीर आती है नजर,
खींच दी है दिल ने जो तस्वीर जिसकी आंख में।

परन्तु जिन लोगों को दर्शन हुए बतलाते हैं, दर्शन करने के बाद उनकी अभिलाषा फिर दुबारा दर्शनों के लिये दुगनी हो गई जैसा कि उन सन्तों के जीवन चरित्र से मालूम होता है कि वे दर्शनों के पिपासू तथा मतवाले ही रहे। क्या यह परमानन्द है।

ठाकुर साहब : भक्त लोग तो आनन्द और मोक्ष के अभिलाषी नहीं होकर दर्शन के अभिलाषी ही होते हैं। कुछ भक्त उसके दर्शन मोक्ष के हेतु चाहते हैं और वे दर्शनों से ही परमानन्द प्राप्त कर लेते हैं।

सन्यासी : यह असम्भव बात है। जिस बात की भावना बलवती हो जाती है उसका मिलना तो किसी भी समय सम्भव हो सकता है। परन्तु जिसकी भावना ही न की जावे उसके बदले में कैसे कोई दूसरी चीज मिल जायेगी। आपको यदि भूख लगी है तो आपकी भूख की तृप्ति के लिये प्रबल भावना करने पर भोजन मिलना सम्भव है। उसके बजाय लकड़ी, लोहा, खाट, पलंग कैसे मिल जायेंगे। यदि मिल भी गये तो आपकी सन्तुष्टि उनसे कैसे होगी। अतः दर्शन की भावना करने से दर्शन तो सम्भव हो सकते

हैं, परन्तु उसके बजाय परमानन्द जो ईश्वर का गुण है वह कैसे प्राप्त होगा ?

ठाकुर साहब : वह हरएक वस्तु में व्यापक है। जिस किसी की भी चाहना करोगे उसमें ईश्वर ही प्राप्त हो जावेगा।

सन्यासी : यदि लोटे में दूध है और लोटे की भावना करो तो वह दूध नहीं बन सकता वह लोटा ही रहेगा। जब उसके अन्दर दूध की भावना करोगे तो उस दूध को पीकर तुम सन्तुष्ट हो सकते हो। किसी वस्तु का स्वभाव नहीं बदला करता चाहे भावना करो या और कुछ। जिस किसी वस्तु की उपासना की जाती है वह तो पुरुषार्थ से प्राप्त हो सकती है।

रात्रि अधिक हो चुकी थी। रेलगाड़ी के आने में केवल तीन घन्टे थे। प्रेमचन्द ने बीच में दखल दे दिया और बोला—"महाराज अब समय अधिक नहीं है। आपका अन्तिम उपदेश चाहते हैं। ठाकुर साहब तो अपने पुराने विचारों का अनुमोदन कराना चाहते हैं आप हमको बताइये कि आपने जो ज्ञानामृत हमको दिया है वह कहाँ-कहाँ उपलब्ध हो सकता है।

यासी : प्रेमचन्द, मैं अब अन्तिम बात तुमसे कहना चाहता हूँ ०, पाँच सहस्त्र वर्ष पूर्व की ऋषि-मुनियों की लिखी हुई पुस्तकें पढ़ना जो वेदोक्त हैं। छः दर्शन शास्त्रों का अध्ययन करना जिनसे जीव, ईश्वर, प्रकृति का ज्ञान होगा।

देखो जब किसी को मालूम होता है कि न्यूयार्क बड़ा सुन्दर नगर है अस्सी-अस्सी मंजिल ऊँचे मकान हैं। सभी काम बिजली से होते हैं तो उसे शौक़ पैदा होता है कि न्यूयार्क चलें। फिर तो उसके लिये रुपया भी जमा करता है, जहाज़ और रेल का टाइम भी देखता है, चित्र में स्थान की स्थिति मालूम करता है कि न्यूयार्क कहाँ है। तब वहाँ पहुँचता है। इसी प्रकार ईश्वर का

स्वरूप मालूम न हो और यह न मालूम हो कि उसकी भक्ति करने से कुछ लाभ भी है, कभी ईश्वर से प्रेम नहीं कर सकता। भक्त लोग जो निःस्वार्थ भाव से भक्ति करना बतलाते हैं यदि उनको यह मालूम हो जावे कि भक्ति करने से कोई लाभ नहीं है तो वे कभी भक्ति न करें। निःस्वार्थ भाव से कोई काम नहीं हुआ करता।

वेदोक्त ग्रन्थों के पढ़ने से ईश्वर के गुण मालूम होते हैं और यह मालूम होता है कि जीवों का कल्याण उसी की शरण में जाने से है और दूसरी तरफ जीव के प्रकृति की ओर आकर्षित होने से जन्म-मरण के चक्र में पड़ा जाता है तो जीव को ईश्वर से प्रेम पैदा हो जाता है और पुरुषार्थ करके आनन्द की प्राप्ति करता है।
प्रेमचन्द : तो मैं जाते ही स्वाध्याय में लग जाऊंगा, परन्तु यह जरा और बतला दीजिये कि पुरुषार्थ क्या है ?

सन्यासी : होता यह है कि जीव अपनी अल्पज्ञता के कारण भ्रम में पड़ जाता है। प्रकृति की बनी हुई चमक-दमक वाली वस्तुओं की ओर सुख पाने की कामना से दौड़ता है। यद्यपि इन्द्रियों की तृप्ति में वह सुख अनुभव करता है मगर स्थाई आनन्द को प्राप्त न कर इस संसार को छोड़कर और दुःखी होकर चल देता है।

ईश्वर, जीव और प्रकृति के ज्ञान से उसका मिथ्या ज्ञान नष्ट हो जाता है। मिथ्या ज्ञान के नाश होने से राग द्वेष का नाश हो जाता है और इससे प्रवृत्ति का नाश होता है और प्रवृत्ति के नाश से कर्मों का सिलसिला बन्द हो जाता है और कर्म का सिलसिला बन्द होने से निष्काम कर्म होने लगते हैं जिससे भोग नहीं बनता। जब भोग नहीं बनता तो वह जन्म-मरण के चक्र से छूट कर आनन्द को प्राप्त हो जाता है।

प्रेमचन्द्र : आपने जीवों का स्वभाव प्रयत्न करना बतलाया। वह कर्म करना कैसे छोड़ सकता है।

सन्यासी : कर्म करने से जीव वंचित नहीं रहता। वेदोक्त कार्य करने से अथवा फल की इच्छा न रखकर कर्म करने से निष्काम कर्म हुआ करते हैं। देखो जब तुम यह समझकर काम करोगे कि ईश्वर ने ऐसा ही आदेश दिया है कि पहले ब्रह्मचारी रहकर ज्ञान प्राप्त करना फिर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके ईश्वराज्ञा के अनुसार पंच महायज्ञ इत्यादि करना फिर वानप्रस्थ में प्रवेश करके जीवन मुक्ति की दशा प्राप्त कर लेना। ईश्वर के इन बतलाये हुए नियमों का पालन करने से जीव को उसके कर्मों का फल प्राप्त नहीं होता। जैसे कोई जल्लाद जज साहब के निर्णय के अनुसार किसी अपराधी को फाँसी पर चढ़ा देता है तो जल्लाद को हत्या करने का दण्ड नहीं मिलता बल्कि मजदूरी दी जाती है। इसी प्रकार ईश्वर की इच्छानुसार काम करने से उसके फल की इच्छा न करके निष्काम कर्म हुआ करते हैं और इसी भाँति परोपकार करने से मन के ऊपर विक्षेप और जो आवरण आये होते हैं उनकी शुद्धि होती है। ईश्वर में दृढ़ता पैदा होती है और मनुष्य पूर्ण वैरागी बन जाता है।

प्रेमचन्द : कृपया यह भी बतादें कि उपासना क्या होती है?

सन्यासी : उपासना के अर्थ हैं समीप बैठना। जिसके समीप तुम बैठोगे उसके गुण तुम में आवेंगे। यदि अग्नि के पास बैठोगे तो गर्मी आवेगी। किसी धर्मावतार के पास बैठोगे तो धर्म की बातें सीखोगे। जैसे विद्याओं की पुस्तकों का स्वाध्याय करोगे वैसी ही विद्या आवेगी। इसलिये प्राकृतिक विषय भोगों की ओर ले जाने वाली चित्त की वृत्तियों का विरोध करके यदि ईश्वर का ध्यान करोगे तो आनन्द की प्राप्ति होगी।

चित्त की वृत्तियों के निरोध का तरीका जो ऋषियों ने बताया है वह अष्टांग योग कहलाता है। इनका पहला अंग यम है। अर्थात् सत्य बोलना, हिंसा न करना, चोरी न करना, इन्द्रिय दमन, ब्रह्मचर्य। दूसरा अंग नियम है। यह भी पाँच हैं अर्थात् शौच, सन्तोष, स्वाध्याय तप और ईश्वर प्राणिधान। तीसरा अंग आसन, चौथा प्राणायाम, पाँचवा प्रत्याहार, छटा धारणा, सातवाँ ध्यान और आठवाँ समाधि है।

जब ऊपर के सात अंगों का अभ्यास हो जाता है तो आठवे अंग समाधि में जाकर चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है। इससे आगे साधक को सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। मनुष्य के शरीर में कुछ नस-नाड़ियों का गुच्छा चक्र की शक्ल में गुदा से लेकर मस्तिष्क तक मौजूद है इनमें संयम करने से साधक को आश्चर्य-जनक शक्तियाँ प्राप्त होती है जिनके आगे आपके वायुयान जलयान, रेडियो, टेलीविजन, टेलीफून - व्यर्थ होते हैं और वह अन्तर ज्ञानी हो जाता है! फिर विवेकज ज्ञान पैदा होकर निर्विकल

समाधि प्राप्त करता है और मोक्ष पद पाकर आनन्द रूप हो जाता है।

गाड़ी का समय हो गया और सब खड़े हो गये। आगे सन्यासी जी हो लिये पीछे ठाकुर साहब और फिर प्रेमचन्द और गोपी चल रही है। एक नास्तिक जो जिज्ञासा की इच्छा रखता हो उसको समझाना कठिन बात नहीं, परन्तु उस व्यक्ति को समझाना जिसने बचपन से ही अपना गलत सिद्धान्त धारण कर लिया हो बहुत कठिन है। पक्षपात एक ऐसा रोग है जिसका रोगी बहुत कठिनाई से अच्छा होता है। ठाकुर साहब को काफी उपदेश मिल चुका हैं और घर की भी चिन्ता है मगर फिर भी मार्ग में पूछने लगे।

ठाकुर साहब : यदि हम देवताओं और शक्तियों की पूजा करें जो हमारे लिये बहुत ही सरल है तो क्या हम अपने उद्देश्य को प्राप्त न कर लेंगे ?

सन्यासी : अभी तुम लोगों को निर्दिष्ट स्थान (उद्देश्य) का ही [illegible]त नहीं है। देवताओं और शक्तियों की पूजा करने से सांसारिक लोक ना[illegible]ों का पूरा हो जाना तो सम्भव है, परन्तु आनन्द रूप हो जाना तो केवल ज्ञान और योग के साधन से ही सम्भव है। जैसा कि ईश्वर का उपदेश है। चाहे यह ज्ञान किसी भाषा में क्यों न हो। भक्त लोग तो मोक्ष अर्थात् आनन्द रूप होना चाहते ही नहीं, वे तो केवल मणियों और मोतियों से गुथे हुए मुकुट और चन्द्र जैसी सुन्दर सूरत के अभिलाषी हैं। दर्शन हो जाने के बाद उनका क्या परिणाम होगा यह उनको पता नहीं। क्या मरने के बाद भी दर्शन करने के लिये फिर जन्म धारण करेंगे। जैसी भावना मरने के समय होती है वैसा ही जन्म हुआ करता है और मरने के समय वही भावना जगृत होती है जो

रात्रि व्यतीत की। ठाकुर साहब को विक्रमपुर की याद आ रही थी। बार-बार सड़क की तरफ दृष्टि डालते थे शायद कोई उनके गाँव की गाड़ी स्टेशन पर आई हो, ताकि रात्रि में ही विक्रमपुर को चले जावें। आखिर इसी प्रतीक्षा में दिन निकल आया। प्रेमचन्द इधर-उधर टहल रहा था। स्टेशन के पास ही एक स्कूल था। उस ओर दृष्टि गई तो देखा कि कुछ विद्यार्थी जमा हैं। एक मैदान में कुर्सियाँ डाली जा रही हैं। प्रेमचन्द एक अच्छा खिलाड़ी था फौरन समझ गया कि यह स्कूल का फील्ड है जिसमें कोई मैच होने वाला है। शौक बढ़ा और ठाकुर साहब को उधर संकेत किया "देखो ठाकुर साहब यहाँ कोई खेल होने वाला है जब तक आपको कोई गाड़ी विक्रमपुर को जाने वाली न मिले तब तक यहीं मन बहलायेंगे।" तीनों उधर को चल पड़े। लड़के अपनी-अपनी वर्दियाँ पहन कर मैदान में उतर आये। रैफ्री ने सीटी बजाई और फुटबॉल का मैच प्रारम्भ हो गया।

संस्कार बड़े प्रबल होते हैं। इन्सान को अपनी तरफ खींच ही लेते हैं। प्रेमचन्द तमाशे में संलग्न हो गया। जब कोई किक अच्छा लगता और गोल की तरफ गेंद जाती तो तालियाँ बजाता, चिल्लाता, शोर मचाता, आगे को बढ़ता। आखिरकार कुर्सियों तक पहुँच ही गया। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब अपने प्रिय मित्र को एक कुर्सी पर बैठा देख पीछे से निकल कर उससे जा लिपटा।

कृष्ण कुमार : प्यारे मित्र, तुम यहाँ कैसे। मैं तो बड़ी चिन्ता में था कि डाकू लोग तुम्हें कहाँ ले गये।

प्रेमचन्द : ईश्वर ने बड़ी कृपा की कि हम बचकर आ गये। भाई, जो कुछ ईश्वर करता है वह अच्छा ही करता है।

कृष्ण कुमार : एं, तुम्हारे मुख से ईश्वर का नाम कैसे निकल रहा है और ठाकुर साहब को कहाँ छोड़ा।

प्रेमचन्द : अपनी कहानी फिर सुनाऊँगा पहले दो कुर्सियां पीछे की ओर डलवालो फिर अपनी सुनाओ।

कृष्ण कुमार : भाई, तुम्हारे डाकुओं के साथ चले जाने के बाद मैं कई दिन तक विक्रमपुर में रहा। कुँवर साहब का इरादा लन्दन जाने का हो गया। मैंने बहुत समझाया, मगर वह नहीं माने और चले ही गये। मैंने एक अखबार में पढ़ा कि इन्दौर में एक स्कूल स्थापित होने वाला है और उसके लिये अध्यापकों की आवश्यकता है। मैंने आवेदन-पत्र भेज दिया और प्रधान अध्यापक हो गया। यहाँ एक मकान किराये पर ले लिया है। चलो वहीं पर बातें होंगी।

ठाकुर साहब और गोपी दोनों कुर्सियों पर बैठ गये और प्रेमचन्द फिर वही "गो औन, गो औन" कहने और चिल्लाने में संलग्न हो गया।

हाफ टाइम की सीटी बजी। प्रेमचन्द सोच में पड़ गये। ओह, मैं क्या तमाशा देख रहा था। मुझको पता नहीं कि मैं क्या कर रहा था। स्वामी जी ने ठीक ही कहा था कि तुम्हारे संस्कार तुम्हें दुनियादारी की ओर खींच लायेंगे। इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल होती हैं सम्भव है कि कोई ऐसा ही वक्त आ जावे कि मैं इतना मदहोश हो जाऊँ कि जितना इस तुच्छ दृश्य को देखकर हो गया। क्या शादी मुझे भी करनी होगी ? नहीं, जहाँ तक हो सकेगा ब्रह्मचारी रहकर स्वाध्याय अवश्य करूँगा।

ऐसे विचार उसके मस्तिष्क में घूम ही रहे थे कि दूसरी सीटी बजी और खेल पुनः आरम्भ हो गया। प्रेमचन्द ने बहुत प्रयत्न किया कि सावधानी से रहकर खेल को देखें मगर फिर भी उसके मुँह

से "वाह-वाह" निकल जाती थी। आखीर को एक पार्टी हारी। खेल समाप्त हुआ। जीतने वाली पार्टी ने दूसरी पार्टी से हार के हस्ताक्षर कराये और हुर्रे-हुर्रे कहकर आसमान गुँजा दिया।

कृष्ण कुमार अपने तीनों महमानों को साथ लेकर घर चलने लगे। ठाकुर साहब सीधे गाँव जाने के लिये अनुरोध करने लगे, परन्तु कृष्ण कुमार ने उनको जानबूझ कर रोक लिया और भोजन के बाद विक्रमपुर के कुछ हालात सुनाने को कहा। ठाकुर साहब रुक गये। कृष्ण कुमार ने घर जाकर भोजन बनवाया। थोड़ी देर बाद ही मेज बिछाई गई। प्लेट और गिलास आने लगे। चपरासी भोजन ला लाकर देता जाता था चारों भोजन में संलग्न हो गये। प्रेमचन्द अपनी कथा सुनाते हुए मज़ाक भी करते जाते थे। परन्तु कृष्ण कुमार खुश्क हँसी हँसते थे और कभी-कभी ठण्डी साँसें भी लेते जाते थे। प्रेमचन्द से न रहा गया। वह कहने लगे।

प्रेमचन्द : भाई, तुमको क्या परेशानी हैं। हम बातें करते हैं और तुम ठण्डी साँसें भरते हो। क्या हमारा सत्कार तुमको महसूस हो रहा है।

... कुमार : प्रिय प्रेमचन्द पहले भोजन कर लो। इसका भी कारण अभी मालूम हो जायेगा।

इतना कहकर फिर एक ठण्डी साँस ली और नेत्रों में आँसू भर आये। जिह्वा रुक गई। .... आह............... कुँवर साहब का...............दे .... हान्त। ठाकुर साहब और प्रेमचन्द की आँखें फैल गईं। "क्या कहते हो, क्या कहते हो, कृष्ण कुमार फिर कहो क्या कहना चाहते हो।"

कृष्ण कुमार : जब ठाकुर साहब और आपको डाकू लोग पकड़कर ले गये तो कुँवर साहब मेरे मना करने पर भी लन्दन को रवाना हो गये और हवाई जहाज पर सफर करने से, वायुयान की दुर्घटना

कृष्ण कुमार और प्रेमचन्द ने सहारा दिया। मुंह पर पानी छिड़का और तसल्ली देने लगे "धैर्य रखिये ठाकुर साहब. जो कुछ होना था वह तो हो ही लिया। अब ठकुरानी साहिबा की खबर जल्दी जाकर लीजिये। सिवाय सब्र के और क्या हो सकता है।"
ठाकुर साहब : उफ़, सीने में हूक उठ रही है। मैं नहीं समझता, यह दुःख किसको हो रहा है। ब्रह्म को या जड़ मन को। दिमाग़ उलटा जाता है। जल्दी ही एक बैलगाड़ी तलाश करके लाओ।

कृष्ण कुमार ने चपरासी को गाड़ी की तलाश में रवाना किया और ठाकुर साहब को तसल्ली देने में लग गये। बैलगाड़ी आने पर दोनों ने सहारा देकर ठाकुर साहब को गाड़ी पर सवार करा दिया। प्रेमचन्द कुछ शोक और कुछ थकान की वजह से पलंग पर लेट गये। गोपी ने गृहस्थी का काम संभाल लिया।

वैराग्य

ठाकुर साहब की गाड़ी प्रेमचन्द और कृष्ण कुमार से विदा होकर विक्रमपुर की तरफ धीरे-धीरे बढ़ रही है। शोक का पर्वत जो ठाकुर साहब के ऊपर टूट पड़ा है वह उनके ऊपर हथौड़े की तरह चोट लगा रहा है। कभी-कभी ऊँघ आकर उनके दिल को थपथपा देती है। भगवान की अजीब देन है कि मनुष्य कैसे

दुःख के समुद्र में निमग्न हो रहा हो नींद उसके लिये ईश्वर रूप है जो मनुष्य के सभी अनुभव करने वाले अंगों को रोककर भगवान के प्रेम की गोद में स्थान दिला देती है। ठाकुर साहब के शोकातुर मुख पर धूल भी अपना कब्जा जमाने में सफल हो गई है जैसे अब ठाकुर साहब का रौब बिल्कुल ही जाता रहा हो।

बेचारे ठकुरानी साहिबा की दशा पर आँसू बहाते जाते हैं। कभी कुंवर साहब का ध्यान, कभी उनकी नव-विवाहिता पत्नी की वैधव्य अवस्था बाणों की भाँति हृदय को बींध रही है। गाँव का सिमाना आ गया। गाँव के लोग खेतों की ओर आ जा रहे हैं। मगर ठाकुर साहब को देखकर आँखें नीची कर लेते है। सच है आपत्ति में कोई भी दुःख नहीं बाँट सकता। कोई भी मनुष्य अपने मुख से एक भी शब्द ठाकुर साहब से नहीं कहना चाहता।

ठाकुर साहब परेशान हैं "ओह क्या हो गया ? जो कल तक दूर से सलाम झुकाते थे, राम-राम और जुहार किया करते वे आज शक्ल देखकर मुँह फेर रहे है।" गाड़ी का रुख मकान की ओर को बढ़ा। उधर सफेदी के स्थान पर स्याही दिखाई दी। दो चार आदमी इधर-उधर जमा हुए। सब चुपचाप खड़े हैं। ठाकुर साहब डाकुओं के फन्दे से बचकर आये हैं मगर कोई स्वागत नहीं। वह हैरान हैं कि कोई बोलता नहीं। जब आदमी ही जिसे भगवान ने जुबान दी है वही बोलना नहीं चाहता तो दीवार ही क्यों बोलने लगीं कि वे क्यों काली पड़ गई। आखिरकार ठाकुर साहब ने गाड़ी से उतरकर मकान के दरवाजे के अन्दर पैर रक्खा तो चारों ओर मरघट की सी शान्ति नजर आई। मनुष्य तो क्या किसी कुत्ते बिल्ली का भी शब्द सुनाई नहीं दिया। आखिर क्या हुआ। क्या सारे घर में ही आग लग गई ? क्या

सारे के सारे ही वायुयान में बैठकर समुद्र में डूब गये। अरे कोई बोलो। ठकुरानी साहिबा कहाँ हैं ? नव-वधु क्या मैके चली गई ? हे दीवारो, क्या तुम अपने मालिक को नहीं पहिचातीं ? क्या कुँवर साहब के शोक में तुम काली पड़ गई हो ? अरे मंगू, अरे मंगू, कहाँ मर गया ?

मंगू : हुक्म, हुक्म।

ठाकुर साहब : अरे यह क्या है ? टहलनी कहाँ हैं ? बहू जी चली गई ? बोलता है या शूट कर दूँ ?

मंगू : क्या बताऊँ राजा साहब, कुँवर साहब तो लन्दन जाते हुए हवाई जहाज़ में मारे गये। नव-वधु ने आग लगाकर आत्म-हत्या कर ली। ठकुरानी साहिबा का कुँवर साहब के बारे में सुनकर हार्ट फेल हो गया। अब घर है न घर वाले। बस आप हैं और भगवान का सहारा।

> चमन के तख्त पर जिस दम शहे गुल का तजम्मुल था,
> हजारों बुलबुलों की फौज थी और शोर था गुल था।
> ख़िजां के वक्त जब देखा न था जुज़ खार गुलशन में,
> बताता बागबाँ रो-रो यहाँ गुन्चा था यहाँ गुल था।।

ठाकुर साहब के दिमाग़ में एक तूफान उठा। बादल गरजा, बिजली चमकी और वर्षा होने लगी। ख्याल पर ख्याल चक्कर खाने लगे।

"अब क्या हो। बस रिवाल्वर और मैं। ओह आत्म-हत्या पाप है। मेरा मकान, मेरा कमरा सब खाक का ढेर। यह तो सब नाशवान ही हैं। फिर घूँसा लगा, मेरी सन्तान, मेरी धर्म-पत्नी, कुछ नहीं आत्मा अमर है। किसी ने जैसा नोंचा। मेरी शान व शौकत, ओह औलाद का ग़म तो सहना ही होगा।"

इस प्रकार बार-बार चक्र चलता और बार-बार वैराग्य

अपनी ओर खींचता। आखिर को उन्होंने सिर पर हाथ रख लिया और सोचा "ईश्वर के सिवाय कोई साथी नहीं है। मैं पापी हूँ। मेरे कर्म नीच थे। इस जन्म के नहीं तो हजारों पिछले जन्मों के, उन्हीं को भोग रहा हूँ। अब संभल जा और अपने निर्दिष्ट स्थान की ओर पग बढ़ा। तुम जैसे सैकड़ों आये और अपना-अपना बाजा बजाकर महफिल को यों ही छोड़कर चले गये। जमींदारी तो जमींदारी उन्मूलन विधेयक में निकल ही जावेगी, वश नष्ट हो चुका। साज-सामान अग्नि की भेंट हो गया। अब देर लगाना व्यर्थ है।"

ठाकुर साहब : "मंगू, देखो गाड़ी जिसमें हम आये थे वापिस गई या खड़ी है।"

मंगू ने बताया कि गाड़ीवान खाना खाकर अभी निवटा है। गाड़ी वाले से कहकर ठाकुर साहब ने गाड़ी जुतवाई और यह कहकर "हे गाँव के भाइयो, तुम्हारा सबका कल्याण हो। मंगू, ईश्वर तेरी रक्षा करें। हे बड़ी हवेली गुड बाई, गाड़ी में बैठ गये ॱर गाड़ी वाले को गाड़ी हाँकने का हुक्म दिया। इन्दौर पहुँच कर बैंक की ओर चल दिये। अपना डिपौजिट का रुपया करेन्ट एकाउन्ट में बदलवाया। चैक बुक ली और हरिद्वार के लिये रवाना हो गये।

सत्संग

"शाम का झुटपुटा हो गया और अभी तक सोकर ही नहीं उठे। क्या आज सोते ही रहोगे, प्रेमचन्द" कृष्ण कुमार ने कमरे में प्रवेश करते हुए प्रेमचन्द से कहा।

प्रेमचन्द ने आँखें खोलीं। "ओह, क्या दिन छिप गया" प्रेमचन्द ने पूछा।

कृष्ण कुमार : मित्र, तुमने तो कुम्भकरण की नींद को भी लज्जित कर दिया। आवश्यक कार्य से निवृत्त होकर भोजन करो।

प्रेमचन्द : भाई, बहुत थका हुआ था। कई दिन की नींद चढ़ी हुई थी। फिर ठाकुर साहब का हृदय विदीर्ण समाचार सुनकर और भी शिथिलता आ गई। ईश्वर तेरी अजीब लीला है!

कृष्ण कुमार : ओ तू कब से ईश्वर-ईश्वर पुकारने लगा। भूल गया सब डारविन की थ्यौरी, और यह लड़की कहाँ से पकड़ लाया। उठकर बैठ और कुछ तो हाल सुना।

प्रेमचन्द ने सभी हाल सविस्तार सुनाये कि किस प्रकार वह एक सन्यासी के उपदेश से आस्तिक बना और लड़की कैसे उससे प्रभावित होकर साथ हो गई।

कृष्ण कुमार : वाह भाई, डाकुओं का माल भी ले आया और उनका अन्त भी कर आया आस्तिक भी बन आया और शादी भी कर लाया। बधाई, बधाई।

प्रेमचन्द : शादी-वादी कुछ नहीं। मैंने संकल्प कर लिया है कि अभी तो अध्ययन करूँगा कि आखिर यह संसार है क्या। परन्तु मित्र, मैं अपने भरण-पोषण का भार किसी पर रखना नहीं चाहता। कुछ काम मुझे भी दिलवाओ।

कृष्ण कुमार : तुम्हारा तो भाग्य ही उदय हो रहा है। मेरे स्टाफ में एक अध्यापक की आवश्यकता है। कल से ही पढ़ाना आरम्भ करो। १००) रु० मासिक वेतन और ५) रु० वार्षिक तरक्की। खूब गुजारा करो।

प्रेमचन्द : वाह रे भगवान्, मेरे ऊपर इतनी दया। अभी तो ईश्वर पर विश्वास ही किया है। मुँह से निकलते ही सर्विस। भगवान् आपको धन्यवाद है।

कृष्ण कुमार : अब भोजन जल्दी कर लो। मैं रात्रि में एक सत्संग में जाया करता हूँ। आज तुमको भी ले चलूँगा।

पास ही एक पंडित जी रहते थे। दोनों वहाँ जा पहुँचे। एक चौकी पर पुस्तकें लगी हुई थीं। पचास-साठ आदमी आ चुके थे। पंडित जी महाराज आये और चौकी पर विराजमान हो गये। प्रार्थना पढ़ी गई। योग पर व्याख्यान दिया गया। गीता पढ़ी गई। फिर भक्ति मार्ग पर कहानियाँ सुनाई गईं। महाभारत और अन्त में रामायण का पाठ किया गया। सत्संग समाप्त हुआ। प्रेमचन्द और कृष्ण कुमार घर को आये और अपने-अपने पलंग पर लेट गये।

ईश्वर की अनन्त शक्ति को देखो। वहाँ एक पल, एक सैकिन्ड का अन्तर नहीं पड़ता। समय पर सूर्य भगवान् आ धमकते हैं। कभी यह नहीं देखते कि किसी की नींद भी पूरी हुई है या नहीं। चोरों को कुछ माल अभी मिला है या नहीं। चमगादड़ अबाबीलें अपने घोंसलों में जा छिपी हैं या नहीं। कामी पुरुषों की काम-वासना तृप्त हुई है या नहीं। इन सूर्य नारायण को तो अपने काम से ही काम है। करोड़ों वर्ष हो गये यह अपने कर्त्तव्य को ठीक-ठीक करते न थके। आखिर को प्रेमचन्द जी को उठना ही पड़ा। उन्होंने इधर-उधर टटोलना आरम्भ किया। एक पुस्तक सन्ध्या उपासना की उन्हें मिल गई। उल्टी-सीधी सन्ध्या प्रार्थना इत्यादि की और वह बाजार को चल दिये।

बाजार से लौटकर आये तो कृष्ण कुमार रामायण का पाठ कर रहे थे। तबियत बहुत खुश हुई। गोपी ने घर के काम की जिम्मेदारी ले रखी थी। खाना तैयार हुआ। दोनों ने मिलकर खाया और स्कूल की तरफ रुख किया। प्रेमचन्द को क्लास का चार्ज दे दिया। शाम को घर आये तो प्रेमचन्द कृष्ण कुमार से

कहने लगे "मित्र मैं तुम्हारा बहुत ही कृतज्ञ हूं। एक पहेली और रह गई है। उसे भी हल कर दो तो अच्छा है। आपका गैरिज खाली पड़ा है। अगर आप आज्ञा दें तो मैं इसमें अपना खाना तैयार कर लिया करूं और एक कमरा मेरे स्वाध्याय के लिये खाली कर दें। अगर यह न हो सके तो और कोई मकान किराये का दिलवा दें।

कृष्ण कुमार : हम तो शहर से बाहर रहते हैं। तुमसे ज्यादा अच्छा साथी हमको कौन मिलेगा। बातचीत करने का मजा भी रहेगा। कल रविवार का दिन होगा। सामान बाजारसे ले आना। खाना तो यहीं मेरे साथ ही खाना पड़ेगा। परन्तु हमारे कोई नौकर इस समय नहीं है। चपरासी से काम लेना नहीं चाहते। यह लड़की अगर हमारे यहाँ रहे तो सब काम वक्त पर हो जावे।

प्रेमचन्द : मित्र तुम्हारी बात पर मुझे क्या आपत्ति हो सकती है। मैं तो स्वयं चाहता हूँ कि इस लड़की का भी कुछ प्रबन्ध कर दूं जिससे वह हम पर ही आश्रित न रहे।

कृष्ण कुमार : परन्तु वह तो तुम से प्रेम करती है और तुम उसे अलग करना चाहते हो।

प्रेमचन्द : कोई प्रेम करे या न करे। मैं अभी शादी नहीं करना चाहता।

कृष्ण कुमार : ओह बड़े कट्टर स्वभाव के आदमी हो। लो अब खाना खाकर सत्संग में चलने की तैयारी करो।

प्रेमचन्द : मैं नहीं जाऊँगा। आज पुस्तक ले आया हूँ। यहीं पर सत्संग करूँगा।

कृष्ण कुमार : पुस्तकों से सत्संग कैसा ?

प्रेमचन्द : सत्संग में भी तो पुस्तकें ही पढ़ी जाती हैं। ईश्वर सत्य

है। इन पुस्तकों में ईश्वर विद्या ही सत्य का रूप है। उसमें ईश्वर विराजमान रहते हैं। आपके सत्संग में ऐसी कोई बात मैंने नहीं देखी।

कृष्ण कुमार : तेरी तो बुद्धि अभी भी भ्रष्ट है। ले मैं तो जाता हूँ।

प्रेमचन्द : अच्छा मैंने भी पुस्तक खोल ली है।

यह कहकर प्रेमचन्द स्वाध्याय में संलग्न हो गये और कृष्ण कुमार सत्संग में चले गये।

सगुण रूप

अभी तो दिन निकलने में दो घंटे शेष हैं। प्रेमचन्द का उत्साह बढ़ा हुआ है। फौरन उठे और स्नान करके संध्या उपासना में लग गये। आज से नया जीवन आरम्भ हो गया। वास्तव में दुनियाँ में ऐसा देखा जाता है कि जो लोग तीव्र बुद्धि वाले और उन्नतिशील होते है उनकी तीव्र बुद्धि यदि बुरे मार्ग पर चले तो भी सबसे आगे कदम रखते हैं यदि सन्मार्ग में लग जाते हैं तो भी सबसे आगे निकलने की चेष्टा करते हैं।

संध्या की पुस्तकों में वेद मंत्र और उनके अर्थों पर भी मनन किया। ईश्वर के गुण दयालु, अनुपम, सर्वाधार, अजर, अमर, अजन्मा, अविनाशी, न्यायकारी, जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय कर्त्ता पर विचार किया। बुद्धि के ठीक रखने के लिये प्रार्थना आदि पर मनन कर रहे थे कि इतने में कृष्ण कुमार वहाँ आकर कहने लगे।

कृष्ण कुमार : हर वक्त किताब। रात पढ़ते-पढ़ते छोड़ा। अब भी पढ़ते पाया। ले चाय आ गई है कुछ नाश्ता कर लें।

प्रेमचन्द : भाई क्या करूँ। जितनी जीव और प्रकृति की विशेषता मालूम होती जाती है उतना ही हृदय में प्रेम बढ़ता जाता है।

ी कुमार : नया मुसलमान अल्लाह् ही अल्लाह् पुकारा
ता है।

वन्द : जब तक मनुष्य सत्य विद्या प्राप्त नहीं करता तब
लों की भाँति बकवास किया करता है और बुद्धि पर जोर न
र या तो पक्षपात करके अन्ध विश्वास किया करता है या
स्तिक बन जाता है। ईश्वर ज्ञान के भण्डार हैं। वहीं से मनुष्य
ा का प्रकाश प्राप्त करता है।

ा कुमार : विद्या तो स्कूलों में शिक्षा प्राप्त कर बढ़ती है।

वन्द : मगर पुस्तकों में भी तो वही विद्या होती है। जैसे
न्स, डाक्टरी इत्यादि। ईश्वर ने जो परमाणुओं में गुण रखा
न्हीं का जानना साइन्स है और जो गुण औषधियों में रखे
न्हीं का जानना डाक्टरी है। यह सब ही ज्ञान निराकार होता
ौर उन्हीं का (ज्ञान का) भंडार निराकार ईश्वर है।

ा कुमार : ईश्वर अवतार लेकर सगुण रूप भी तो धारण कर
ा है।

वन्द : ईश्वर का सगुण रूप वही है जो समस्त विश्व का रूप
जब वह सृष्टि की रचना प्रकृति से करता है और जीवों को
ान्द प्राप्त कराने के लिये उन्हें शरीरधारी बनाता है तभी
र का नाम, रूप और उसके गुण प्रकट होते हैं। जीव भी
निराकार है और जब वह शरीर पाकर प्रकट होता है तभी
का नाम तथा रूप होता है। इसी प्रकार जैसे तुम निराकार
हुए इस शरीर में सगुण रूप से प्रकट हो, वैसे ही ईश्वर
समस्त विश्व में निराकार रहकर सगुण रूप प्रकट होता है
र जीवों को शरीर तो आनन्द की प्राप्ति के लिये देता। जब
ार स्वयं ही आनन्द-स्वरूप है तो उन्हें शरीर धारण करने की

आवश्यकता नहीं है। सृष्टि की रचना करने से ब्रह्मा, पालन क से विष्णु और संहार करने से रुद्र एक ही भगवान् के नाम और........................।

कृष्ण कुमार : अच्छा बस कर। बन्द कर अपने इस उपदेश को चाय ठण्डी हो गई और तेरा भाषण खत्म ही नहीं होता है।

प्रेमचन्द और कृष्ण कुमार दोनों चाय खत्म करने में ल गये। कृष्ण कुमार तो नित्य रामायण का पाठ प्रातःकाल कर और प्रेमचन्द नित्य सन्ध्या, हवन, स्वाध्याय, जाप, प्राणायाम पंच महायज्ञ इत्यादि करते।

प्रणय

आज छुट्टी का दिन है। फिर क्या चिन्ता और विशेपक स्कूल की सर्विस में। प्रातःकाल से ही दोनों मित्र आपस में किसी बात पर मनोरंजन कर रहे हैं। कृष्ण कुमार जी किसी बात पर प्रेमचन्द को तैयार कर रहे हैं और प्रेमचन्द उसका प्रतिवाद कर रहे हैं। जरा ध्यानपूर्वक सुनिये।

कृष्ण कुमार : यह तमाम व्यर्थ की बात करने का नतीजा क्या है? क्या तुमको विवाह नहीं करना है?

प्रेमचन्द : कुछ समझ में नहीं आता। विवाह करना है या नहीं। कभी इरादा करता हूँ कि समस्त जीवन ब्रह्मचर्य में रहकर बिताऊँ। कभी मन कच्चा पड़ जाता है और यह मालूम होने लगता है कि मेरे पिछले संस्कार मुझे इतनी शक्ति नहीं देंगे कि ब्रह्मचर्य में रहकर समस्त जीवन बिता सकूँ। ऐसा न हो कि न इधर का रहूँ न उधर का।

कृष्ण कुमार : तुम स्वामी जी के वचनों पर भी विश्वास नहीं

करते जिन्होंने तुम्हें उपदेश दिया था कि तुम अभी सन्यास नहीं ले सकते। अच्छा यह बताओ कि गृहस्थाश्रम का उपदेश भगवान् ने दिया है या किसी और ने दिया है। क्या गृहस्थाश्रम में कोई मनुष्य आत्मिक उन्नति नहीं कर सकता ?

प्रेमचन्द : ओह, गृहस्थाश्रम ही तो बड़ा आश्रम है। इसी से सारा संसार चल रहा है। इसी में निष्काम रहकर मन की शुद्धि हुआ करती है। यदि भगवान के आदेश के अनुरूप गृहस्थाश्रम के नियम पालन करते हुए और परोपकार के तौर पर सब काम ईश्वर की आज्ञा समझकर और उसमें अपना अहंकार शामिल न करके दिये जावें तो उसमें अपना भोग नहीं बनता। बल्कि पिछले संस्कार भी शुद्ध हो-होकर ज्ञान की अग्नि में भस्म होते चले जाते हैं और मन सतोगुणी होकर ईश्वर प्रेम में लग जाता है। फिर वानप्रस्थ और सन्यास का मार्ग खुल जाता है तथा उपासना के द्वारा आनन्द की प्राप्ति हो जाती है।

कृष्ण कुमार : फिर क्यों किसी को परेशान करते हो और यह बकवास क्यों है ? इन्द्रियों पर काबू पाना केवल ज्ञानियों और योगियों का ही काम है। तुम तो अभी किधर भी नहीं हो।

प्रेमचन्द : ठीक है जब तक पिछले भोग और संस्कार खत्म न होंगे मोक्ष होना असम्भव है। यदि विवाह संस्कार खत्म न होंगे मोक्ष होना असम्भव है। यदि विवाह संस्कार विधिपूर्वक किया जावे और नियमानुसार गृहस्थ चलाया जावे तो मनुष्य ब्रह्मचारी ही गिना जाता है। यम और नियम का पालन करते हुए नित्य कर्म पंच महायज्ञ इत्यादि करता रहे तो भी मोक्ष का अधिकारी बन जाता है।

कृष्ण कुमार : अच्छा तो इस बात का उत्तर क्यों नहीं देते जो

वादविवाद का विषय है। व्यर्थ समय क्यों नष्ट करते हो। जब तक उत्तर नहीं मिलता मैं यहाँ से नहीं जाऊँगा।

प्रेमचन्द : जैसी तुम्हारी इच्छा हो।

कृष्ण कुमार : बहुत ठीक, बस अगले ही रविवार को तुम्हें दोपाये से चौपाया बना दिया जावेगा।

प्रेमचन्द : और क्या होगा ?

कृष्ण कुमार : कुछ भी नहीं होगा। हम लोग यहाँ के निवासी नहीं हैं। पंडित जी को बुला लेंगे। हम होंगे और तुम।

अगले रविवार को प्रेमचन्द जिज्ञासु गोपी से विवाह कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर गये और गोपी आनन्द का जीवन व्यतीत करती हुई स्वामी जी के उपदेश के अनुसार पतिव्रत धर्म का पालन करने लगी।

तृतीय खण्ड

योग साधन

अहा भागीरथी तुम्हारी महिमा को कहाँ तक वर्णन किया जा सकता है। तुम्हारे जल को यदि अमृत कहा जाय तो अनुचित न होगा। हिमालय की ऊँची चोटियों से किसी महादेव की जटा की तरह जो चारों ओर बिखर रही हो, निकलकर तुमने कैसे-कैसे नाम पाये। बड़े-बड़े योगी यति तुम्हारे आँचल में ईश्वर के ध्यान में मग्न होकर अन्तिम पदवी तक पहुँचे। भारत के सभी ईश्वर भक्त तुमसे प्रेम करते हैं। तुम्हारे ही तट पर धर्मात्मा धनी पुरुषों ने बड़े-बड़े भवनों का निर्माण कराया है। ऋषिकेष से आगे लक्ष्मण झूले के पास एक भव्य भवन है जिसकी नींव काली कमली वाले ने डाली और जो स्वर्गाश्रम के नाम से पुकारा जाता है। सैकड़ों वैरागी, योगी, पेंशनर, अमीर, गरीब सभी इस तरफ आते जाते हैं। हमारे ठाकुर साहब भी घर की बरबादी से निराश होकर यहाँ कितने ही दिन से ठहरे हुए हैं सच्चाई की तलाश में परेशान हैं। परन्तु कोई सीधा रास्ता दिखाने वाला अभी नहीं मिला।

कभी सन्यासी जी का उपदेश उनके कानों में गूँजने लगता कि परमानन्द की प्राप्ति ज्ञान और योग से होती है, मगर ज्ञानियों की एक बड़ी संख्या के वहाँ पर मिलने पर भी ठाकुर साहब की तसल्ली नहीं होती थी। नवीन वेदान्त के वादविवाद पर शंकाओं के निवारण न होने से उनका विश्वास उखड़ चुका था। अन्त में

उनकी यह इच्छा बलवती होती गई कि किसी योगी से मिलक
उन्नति की ओर पग बढ़ायें।

अहा जिसने सब कुछ गृहस्थाश्रम में भोग लिया हो। ऊँच
नीच सबका दुनियाँ में अनुभव प्राप्त कर लिया हो। जो स
आशाओं पर पानी फेर चुका हो उसे कहाँ चैन मिल सकता है
उसके लिये केवल एक ही स्थान है "भगवान की गोद।" उन्हों
स्वर्गाश्रम को छोड़ दिया और पहाड़ों की ओर बद्री नारायण क
रास्ता पकड़ लिया। अधिक दूर नहीं गये थे कि एक ओर छोटी स
कुटिया नजर आई। धीरे-धीरे उसके दरवाजे पर पहुँच गये
देखा योगी महाराज आसन लगाये विराजमान हैं। ठाकुर साहब
ने वहीं धरना दे दिया। दिन छिपने तक प्रतीक्षा करने पर भी
कोई फल न मिला फिर स्वर्गाश्रम लौट आये परन्तु इन्हें चैन नहीं
था सुबह होते ही फिर वहाँ को कूच कर दिया। यद्यपि योगी जी
को कुछ खाने-पीने का सामान लेने पहाड़ से नीचे आना था परन्तु
अभी वे अपनी कुटिया में ही मौजूद थे। वे ठाकुर साहब को
उधर आता देखकर मुस्करा कर बोले।

योगी : कहो भाई, इधर कैसे आना हुआ ?

ठाकुर साहब : अपनी मौत की तलाश में टक्करें मारता फिर रहा हूँ। सम्पत्ति, कुटुम्ब सभी बर्बाद हो चुके हैं। दुःख के समुद्र में नाव पड़ी है और अंधकार छाया है, तूफान बढ़ रहा है, न किनारे का पता है और न नाव ही डूबती है।

योगी : तुम क्या चाहते हो अपनी बात कहो।

ठाकुर साहब : आपकी सेवा जिससे मेरा कल्याण हो।

योगी : अवश्य होगा। मैं सोचता हूँ तुम घर छोड़कर अभी आये हो, परन्तु मेरे पास ऐसी कोई घुट्टी नहीं है जिसे घोलकर तुम्हें पिला दूँ। न कोई ऐसे जाप हैं जिसके एक बार के ही कहने से

दुःखों के सब फन्द कट जायें। सम्भव है तुम्हारी आयु ही पूरी हो जावे और कोई मतलब हासिल न हो सके।

ठाकुर साहब : बेशक मैं तो यही समझकर आया हूँ।

योगी जी ने ठाकुर साहब को कुछ यम, नियम और आसनों का ज्ञान देकर आज्ञा दी कि धीरे-धीरे अपनी झोंपड़ी पास ही बनालें।

"सनातन धर्म की व्याख्या"

"गुड मौर्निंग प्रेमचन्द" कृष्ण कुमार ने प्रेमचन्द के कमरे में दाखिल होते हुए कहा, हलो क्या हो रहा है ?"

प्रेमचन्द : नमस्कार महाराज, संध्या उपासना, देवयज्ञ से निवटकर स्वाध्याय की तैयारी कर रहा हूँ।

कृष्ण कुमार : अबे, यह क्या स्वाध्याय का राग लगा रक्खा है कहीं पागल न हो जाना। रात में सत्संग ही सुन आया करो यहाँ क्यों समय नष्ट करते हो।

प्रेमचन्द : जरा बैठिये, चाय तैयार कराता हूँ।

कृष्ण कुमार : हाँ हाँ अब तो चाय तैयार करने वाली मौजूद है।

प्रेमचन्द : ठीक है भाई अब क्या चिन्ता है ? सब काम समय पर हो जाते हैं। सत्संग तो वही है जिससे सच्चाई प्रकट हो, परन्तु उस सत्संग में तो ऐतिहासिक बातें ही अधिकतर बताई जाती हैं। मन एकाग्रता की कोई बात नहीं बताई जाती जिससे आनन्द की प्राप्ति हो सके।

कृष्ण कुमार : मन की एकाग्रता कैसे होती है ?

प्रेमचन्द : मन की एकाग्रता स्वाध्याय इत्यादि से होती है। जैसे इस सृष्टि का ज्ञान जब होता है कि इसमें कोई भी वस्तु ऐसी

नहीं है जिससे कि स्थाई आनन्द हो तो प्राकृतिक वस्तुओं से वैराग होकर ईश्वर के गुणों को जानकर उसकी तरफ प्रेम बढ़ जाता है। जिससे चित्त की वृत्तियों का विरोध होता है। दूसरे प्राणायाम इत्यादि से भी मन में एकाग्रता होती है। देखो जब हम सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय की ओर देखते हैं कि किस प्रकार मिट्टी जल रूप होकर अग्नि से फैलकर परमाणु रूप हो जाती है तो फिर क्या बाकी रह जाता है। उस हालत को जिसमें ईश्वर ही शेष रह जाता है ध्यान में लाते हैं तो मन को एकाग्र करने का अभ्यास दिन-दिन दुगना होता चला जाता है।

कृष्ण कुमार : (बात काटकर) भाई यह बातें हमारे वस की नहीं। हमको तो भागवत्, रामायण और पुराणों की बातें ही अच्छी लगती हैं जिससे पापी जन आसानी से संसार सागर से पार हो जाते हैं। परन्तु उसमें कुछ ऐसी बातें भी आ जाती हैं जो दिल को नहीं भातीं।

प्रेमचन्द : यह बातें बाममार्गियों की बनाई हुई हैं। महाभारत जिसे लगभग पाँच हजार वर्ष गुजर चुके हैं उस समय तक सृष्टि की आदि से लेकर वैदिक प्रचार होता रहा और सन्यासी, पंडित, ऋषि, मुनि, राजा सब ज्ञान से जानकारी रखते रहे। परन्तु इस युद्ध में बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ, बड़े-बड़े धनुर्विद्या के जानने वाले काल चक्र के ग्रास बन गये और धीरे-धीरे पंडितों के विचारों पर भोग-विलास ने सिक्का जमा लिया और एक वर्ग "चारवाक' के नाम से उभरने लगा। वेदों का गलत अनुवाद किया गया और जीवित पशु यज्ञों में डाले जाने लगे। माँस-मदिरा का वोलवाला हुआ। परन्तु संसार कभी सन्तों से खाली नहीं रहा। इसी समय बुद्ध का अवतार हुआ और उसने एक नये मत का प्रचार आरम्भ कर दिया।

कृष्ण कुमार : परन्तु इन सब पुस्तकों में वेद का ही हवाला दिया है।

प्रेमचन्द : हवाला ही हवाला है। वेदों में तो ज्ञान, कर्म, उपासना का बयान है। किस्से कहानियाँ नहीं हैं।

कृष्ण कुमार : यह बात सब ही लोग जानते हैं कि ब्रज में अभी तक भगवान राधिका जी के साथ रास करते हुए देखे गये हैं। यह बात गलत नहीं हो सकती।

प्रेमचन्द : देखे गये हों या न देखे गये हों, परन्तु यह बात भी सबको मालूम है कि किसी भक्त ने कभी दर्शन करते समय इस भारतवर्ष की भलाई के लिये प्रार्थना नहीं की कि जो लोग दूसरे देशों से आकर हमारे ऊपर राज्य करते रहें और हमारे धर्म गिराते रहे, इसका कोई उपाय करें। मुसलमानों के राज्यकाल में हमारे मन्दिरों की मस्जिदें बनाई गईं, अंग्रेजी राज्य में गऊ कटती रहीं परन्तु गोपाल जी ने कोई दण्ड इन्हें नहीं दिया। आज तक कोई यह न बता सका कि श्री राधा जी का नाम श्री कृष्ण जी के साथ क्यों जोड़ा गया।

कृष्ण कुमार : तू तो पुराना नास्तिक ही रहा। धर्म की बातों में अंधविश्वास की आवश्यकता होती है न कि तर्क की।

प्रेमचन्द : तभी तो हजारों मत बनते चले जा रहे हैं जैसा जिसके जी में आता है वैसा ही विश्वास करके अंधविश्वास करने लगता है। इसी से हमारी जाति को हानि पहुँची है। सहस्त्रों की संख्या में लोग हमारी जाति से निकलकर अन्य जातियों में मिल गये हैं। इस विज्ञान के युग में यूरोपियन सभ्यता से प्रभावित लोग इन झूठी बातों पर विश्वास न करते हुए दूसरे देशों की सभ्यता ग्रहण करते चले जा रहे हैं।

ा कुमार : अच्छा चाय तो तूने मंगवाली। वही पागलपन रने लगा।

चन्द : क्षमा करना। चाय तो तैयार रक्खी है।

प्रेमचन्द चाय लाये और दोनों ने चाय पी। फिर कृष्ण ार "गुडवाई" कहकर अपने कमरे की तरफ चल दिये।

वेदोक्त जीवन

पाठकगण, आप यह सोच रहे होंगे कि यह विवाद कब तक नता रहेगा। आखिर इस कहानी का अन्त भी होगा या अका- ा ही पाठकों का दिमाग खराब किया जा रहा है। इन बातों का ाखिर नतीजा क्या है। अगर किसी को शौक है तो बड़े-बड़े ःषियों की लिखी हुई पुस्तके मौजूद हैं उन्हें पढ़ लेगा। तुम्हारी कवास को कौन सुनता है। अगर जिज्ञासा नहीं होगी तब भी ों काम चलता है। फिर यह कागज और कलम क्यों घिसे जा हे हैं। पाठकगण आप जो कुछ इस पुस्तक में पढ़ रहे हैं यदि ौर से मनन करोगे तो आपको एक सत्य का पता लगेगा जिसमें ाभी परिवर्तन नही होता और बहुत सी बातों से जो हमारे दिल ां पैदा होती हैं तथा जो तुम्हारे समय को नष्ट करती रहती हैं ानसे बचने का विचार आयेगा। जो मूल सिद्धान्त इस सृष्टि के ; उनसे जानकारी होकर जिज्ञासा पैदा होगी, ईश्वर के लिये ोम उत्पन्न होगा। भूले हुए लोगों के लिये मार्गदर्शन होगा फिर भी मैं इस कहानी को शीघ्र समाप्त करने का प्रयत्न करूंगा।

सब बातों को छोड़कर केवल इतना कहना चाहता हूँ कि प्रेमचन्द जी के लड़का पैदा हुआ और उचित समय पर विधि पूर्वक सस्कार हुए, यज्ञोपवीत कराकर गुरुकुल में बीस वर्ष दीक्षा लेकर समावर्तन हुआ। वह निष्काम, कर्मयोगी, पूर्ण ब्रह्मचारी

आयुर्वेदाचार्य होकर गुरुकुल से निकला और परोपकार में
गया। वह जंगल से जड़ीबूटियाँ लाता और रोगियों को घ
बाँटता ईश्वर के नाम पर उन्हें अच्छा करता। सभी प्राणियो
एक भाव से सेवा करता और सभी में ईश्वर का रूप देखर
लोगों में श्रद्धा बढ़ने लगी। बिना मूल्य औषधियाँ बाँटता
रोगियों की सेवा करता और भगवान से उनके अच्छे होने
प्रार्थना करता रहता। ईश्वर की कृपा से वह जिसे दवा देता
रोगमुक्त हो जाता था। अपनी सेवा का उपहार लेने के लि
लोगों द्वारा विवश होने पर अपनी कोठरी के सामने एक गोल
रखवा दी जिसके सहारे से बहुत सी पेटेन्ट औषधियाँ आदि आ
लगीं और इस प्रकार एक बहुत अच्छा और बड़ा औषधाल
बन गया।

प्रेमचन्द अपने सुपुत्र की हालत देखकर फूले न समाते थे
घरबार का खर्च खुद ही चलाते रहे और इसी सोच में रहते कि
कोई ठीक समय आ जाय तो अपने पुत्र का विवाह करके वान
प्रस्थ आश्रम ग्रहण कर लें।

दूसरी ओर कृष्ण कुमार की पुत्री विनोद १८ वर्ष की हो
चली है। बेचारे परेशान हैं। जिसे देखो दहेज़ माँगता है और
वह भी इस हद तक कि अगर घर का सारा सामान बेच दिया
जावे तो भी पूरा न हो। एक दिन इसी विषय में विचारमग्न थे
थे कि उनकी धर्मपत्नी उन्हें चिन्ता में देखकर कहने लगी कि
आज तो आप विशेष चिन्तामग्न प्रतीत होते हैं।

कृष्ण कुमार : क्या बताऊँ, विनोद अब काफी बड़ी हो गई है।

स्त्री : अवश्य हो गई है। आपने कितनी ही जगह से बातचीत कर
रक्खी हैं। क्या कहीं से सम्बन्ध पक्का होने की आशा नहीं है।

कृष्ण कुमार : आशा तो कई जगह से है, परन्तु इतना धन कहाँ से लाऊँ। हरएक सहस्त्रों की बात करता है।

स्त्री : अंग्रेजी पढ़े-लिखों को भाड़ झोंको। मेरी विनोद तो ईश्वर भक्त है। वह अंग्रेजी सभ्यता को पसन्द नहीं करती है। आपके साथ प्रतिदिन रामायण का पाठ करती है। सीधा-साधा चलन है। न कंघा-शीशे की चिन्ता है, न सैन्ट-लिपिस्टिक की और न ही तरह-तरह की साडियों का शौक। यदि प्रेमचन्द के लड़के डाक्टर रतनचन्द के साथ उसका विवाह कर दिया जाय तो न रुपये-पैसे की चिन्ता और न वर तलाश करने की ही परेशानी।

कृष्ण कुमार: परन्तु विनोद इस सम्बन्ध को पसन्द भी करेगी।

स्त्री : वाह यह आपने वहुत कहा। वह तो वहुत सीधी-साधी है माता पिता की इच्छा में उसका कुछ दखल नहीं है। ब्रह्मचारी के प्रति उसका कुछ अनुराग भी दिखाई देता है। पूर्ण ब्रह्मचारी होने से उसका तेज बराबर बढ़ रहा है और बहुधा लोग उसके खाने-पीने का भी प्रबन्ध कर जाते हैं। बक्स में भी यथेष्ट टके आ जाते हैं। दिन रात मरीजों का ताँता बँधा रहता है। सौ डेढ़ सौ रुपये माहवार तो कहीं भी नहीं गये। इन अंग्रेजी पढ़े लिखे लड़कों को ही क्या अधिक मिल जाता है। पढ़ने-लिखने के बाद नौकरी की तलाश में ही वर्षों घूमते रहते हैं और यदि मिल भी गयी तो पाप कमाने की धुन में लगे रहते हैं।

कृष्ण कुमार : तुम्हें कैसे मालूम है कि विनोद ब्रह्मचारी जी से प्रेम करती है।

स्त्री : कभी-कभी दवा लेने वहाँ जाती रहती है और ब्रह्मचारी जी की प्रशंसा करती रहती है।

कृष्ण कुमार : अच्छा तो प्रेमचन्द से इस विषय में बातचीत करूँगा।

वानप्रस्थ

रविवार का दिन भी कैसा शुभ दिन है। सरकारी कर्मचारी, स्कूल के विद्यार्थी तथा बड़े-बड़े नगरों के व्यापारी लोग भी इसके आने का इन्तजार करते रहते हैं। हैडमास्टर कृष्ण कुमार की कोठी पर यज्ञशाला के चारों ओर कुर्सियाँ बिछी हुई हैं। तख्त पर कालीन मसन्द लगे हुए हैं। एक ओर प्रेमचन्द तथा उनके साथी विराजमान हैं। दूसरी ओर कन्या पक्ष के पंडित, हैड-मास्टर साहब तथा स्त्रियाँ बैठी हुई है। बीच में वर-वधु। डाक्टर रतनचन्द आयुर्वेदाचार्य तथा कुमारी विनोद वेद मन्त्रों का उच्चारण कर रहे हैं। यज्ञ समाप्त हुआ। वधु ने वर के गले में माला पहनाई और उपस्थित सज्जनों ने वर-वधु को आशीर्वाद देकर शुभ कामनायें कीं।

इसके पश्चात् तुरन्त ही नक्शा बदल गया। प्रेमचन्द जी ने तुरन्त ही वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करने का संस्कार कराया और घर पहुँचकर घर छोड़ने की तैयारी में लग गये। बड़े-बड़े विचार आये कि ऐसे समय में जबकि हर मनुष्य परेशान है, जंगलों में ऐसे फलदार वृक्ष नहीं जिनसे साधु सन्यासी का गुजारा हो सके, नकली तथा गृहस्थी साधुओं ने इस संसार को धोखे में डाल रक्खा है, कहाँ जायें। कभी हिमालय की गहन गुफाओं में समाधि लगाने का विचार होता था। कभी ठाकुर साहब के हाल जानने का विचार उठता था तो कभी विन्ध्याचल की गुफाओं में मन जा अटकता था। इन्हीं विचारों में मन चंचल था कि उन्हें सन्यासी जी की यादआई। जितना सन्यासी जी का विचार होता था उतनी ही श्रद्धा बढ़ती जाती थी और अन्त में सन्यासी जी के दर्शनों की लालसा अत्यन्त बढ़ गई। अपने खाने आदि का प्रबन्ध करने का भी प्रश्न विचाराधीन था

अन्त में यह सोचकर कि कुछ रुपया लेकर चलना चाहिये जो उन्होने बैंक में जमा कर रक्खा था। ऐसे विचारों में पड़े-पड़े उन्हें नींद आ गई। प्रातः उठकर नित्य कर्म से निवृत्त होकर अपने समधी हैडमास्टर साहब कृष्ण कुमार के घर पहुँचे और अपने प्रौवीडैन्ट फण्ड का रुपया डाक्टर रतनचन्द के नाम करके सीधे बैंक पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपना बैंक में जमा रुपया चैक काटकर निकाला।

प्रेमचन्द बाहर निकले और शाम की गाडी से होशिंगाबाद के लिये प्रस्थान कर दिया। नगर के लोगों ने विदाई में हार पहनाये और बधाइयाँ दीं। गाड़ी ने सीटी दी और कृष्ण कुमार तथा उनकी स्त्री रुमाल से आँसू पोंछते रह गये।

डाकगाड़ी सपाटे भरती चली जा रही है। स्टेशन के बाद स्टेशन छोड़ती चली जाती है। ईश्वर के चमत्कार तो अद्भुत हैं ही, परन्तु वाह रे मनुष्य ! तू ने भी वह कमाल कर दिखाये हैं कि सबको आश्चर्य में डाल दिया है। गाँव के गाँव एक ही गाड़ी में ढुले चले जा रहे हैं। सहस्त्रों स्त्री-पुरुष तथा बच्चे अपने-अपने सामान के साथ बड़े आराम से बड़ी तेजी से जंगलों व नदियों को पार करते हुए अंधेरी रात में बिना किसी जीव-जन्तु के भय के चले जा रहे हैं और लाखों प्राणी इस आश्चर्यजनक आविष्कार से इधर से उधर हो जाते हैं। इन्जन की छकछक की आवाज तथा पहियों की खटाखट ऐसी प्रतीत होती है कि जैसे कोई अप्सरा तबले पर नृत्य कर रही हो। कोई यात्री औंघ रहा है तो कुछ लोग समय विताने के लिये आपस में बातचीत कर रहे हैं।

एक यात्री : आप कहाँ जा रहे हैं ?

दूसरा यात्री : कहाँ जा रहा हूँ, एक अभागा हूँ। भगवान ने एक

वानप्रस्थ

रविवार का दिन भी कैसा शुभ दिन है। सरकारी कर्मचा
स्कूल के विद्यार्थी तथा बड़े-बड़े नगरों के व्यापारी लोग भी इस
आने का इन्तजार करते रहते हैं। हैडमास्टर कृष्ण कुमार
कोठी पर यज्ञशाला के चारों ओर कुर्सियाँ बिछी हुई हैं। त
पर कालीन मसन्द लगे हुए हैं। एक ओर प्रेमचन्द तथा उन
साथी विराजमान हैं। दूसरी ओर कन्या पक्ष के पंडित, है
मास्टर साहब तथा स्त्रियाँ बैठी हुई है। बीच में वर-वधु
डाक्टर रतनचन्द आयुर्वेदाचार्य तथा कुमारी विनोद वेद मन्त्रों क
उच्चारण कर रहे हैं। यज्ञ समाप्त हुआ। वधु ने वर के गले
माला पहनाई और उपस्थित सज्जनों ने वर-वधु को आशीर्वा
देकर शुभ कामनायें कीं।

इसके पश्चात् तुरन्त ही नक्शा बदल गया। प्रेमचन्द जी ने
तुरन्त ही वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करने का संस्कार कराया
और घर पहुँचकर घर छोड़ने की तैयारी में लग गये। बड़े-बड़े
विचार आये कि ऐसे समय में जबकि हर मनुष्य परेशान है, जंगलों
में ऐसे फलदार वृक्ष नहीं जिनसे साधु सन्यासी का गुजारा हो
सके, नकली तथा गृहस्थी साधुओं ने इस संसार को धोखे में डाल
रक्खा है, कहाँ जायें। कभी हिमालय की गहन गुफाओं में समाधि
लगाने का विचार होता था। कभी ठाकुर साहब के हाल जानने
का विचार उठता था तो कभी विन्ध्याचल की गुफाओं में मन
जा अटकता था। इन्हीं विचारों में मन चंचल था कि उन्हें
सन्यासी जी की यादआई। जितना सन्यासी जी का विचार
होता था उतनी ही श्रद्धा बढ़ती जाती थी और अन्त में सन्यासी
जी के दर्शनों की लालसा अत्यन्त बढ़ गई। अपने खाने
आदि का प्रबन्ध करने का भी प्रश्न विचाराधीन था

पुत्र दिया था। चार वर्ष बीमार रहकर चल बसा। सारा धन डाक्टरों की जेबों में चला गया कुछ पंडितों ने पाठ करके और कुछ ज्योतिषियों ने ग्रह शान्त करने में हडप लिया, परन्तु ईश्वर की इच्छा न टली। अब जीवन से ऊबकर पहाड़ों की ओर जा रहा हूँ या तो शिवजी महाराज के दर्शन करूँगा या गंगा को अपना जीवन भेंट कर दूँगा। मुक्ति तो हो ही जावेगी।

प्रेमचन्द जी ने जैसे ही सुना कि आत्मघात करेगा तो चुप न रह सके और यात्री से कहने लगे—भाई आत्मघात करना महा-पाप है। अगर पुलिस सुनेगी तो तुम्हें पकड़ लेगी। शरीर के बन्धन से निकल भागना ऐसा ही अपराध है जैसे कि जेल से कोई कैदी भाग जाय। भगवान् ने शरीर किसी आश्रय से दिया है। इस पर तुम्हारा अधिकार नहीं है। भोग परमात्मा की ओर से जीव के कर्मानुसार मिलता है। भगवान् के इशारे पर ही सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा सभी देवता अपने-अपने कार्य में लगे नाच रहे हैं। गंगा जी में डूबकर मरना मोक्ष नहीं कराता और न मोक्ष का सम्बन्ध देवताओं की पूजा से ही है। पर्वतों पर जाकर क्या करोगे। वहाँ पर क्या भगवान् विराजमान हैं जो दर्शन देंगे ?

दूसरा यात्री : सुना है पर्वतों पर शिवजी महाराज का वास है। वह दर्शन देंगे।

प्रेमचन्द : आजकल बड़े-बड़े वैज्ञानिक तथा पर्वतारोही गौरीशंकर, कैलाश, कंचनजंगा इत्यादि तक हो आये हैं। वहाँ तो किसी का वास नहीं है। ईश्वर तो सर्वव्यापक है और सर्वव्यापक होना निराकार रूप से ही हो सकता है।

दूसरा यात्री : वह बहुरूप है। भावना से सब ही हो जाता है।

प्रेमचन्द : बहुरूप तो बहुरूपिया होता है जो भेष बदल-बदल कर

संसार का शिरोमणि साबित करने में अपना जीवन बिताने में मस्त, सत्य को सत्य और झूँठ को झूँठ बिना किसी भय के प्रमाणित करके प्राचीन आर्य संस्कृति का सन्देश सुना गया और सदियों से जर्जरित भारत को जगत्-गुरु होने का उसका पुराना गौरव प्रदान कर गया।

यही नहीं, बीसियों कुरीतियों को दूर करके लाखों की तादाद में विधवाओं का सिर मुँड़ाने और बेधर्म होने से बचा गया। स्वराज्य का सबक पढ़ाया और सोलह संस्कार, जिन्हें सब लोग भूले हुए थे सिखा गया। कहाँ तक कहा जाय। छःहों दर्शन शास्त्रों को जिनके अनुयायी आपस में वाद-विवाद करके सिर फोड़ा करते थे आपस में मिलाकर बता गया कि सभी ऋषियों की बनाई हुई पुस्तकें ठीक हैं और आखिर में हम ही लोगों की भलाई के लिये अपना बलिदान दे गया। जरा बताओ तो सही कि उसने कौन सा काम अपने स्वार्थ का किया।

पहला यात्री : हम इन बातों को नहीं जानते। जो बात सनातन से चली आई है वही ठीक है।

प्रेमचन्द : सनातन तो केवल वेद ही हैं। क्या उनसे भी पहले कोई और पुरातन समय था।

पहला यात्री : हमें खबर नहीं क्या था क्या नहीं था। हम तो जो देखते आये हैं वही जानते हैं।

प्रेमचन्द : तुम हो इस जमाने में और बातें करते हो सनातन की। असल में तुम कुछ नहीं जानते।

एक तीसरा यात्री जो इन बातों को गौर से सुन रहा था बीच में ही बोल उठा खुदा की बातें खुदा ही जानता है। उसी की शान है। बस हम तो यही जानते हैं कि खुदा ने अपने बन्दों को इबादत करने के लिये पैदा किया और दुनियाँ में भेज दिया।

प्रेमचन्द : कहाँ से भेजा। तुम पहले कहाँ थे और क्या कर रहे थे ?

तीसरा यात्री : खुदा ने रूहें बनाई और आजमाइश करने के लिये दुनियाँ में भेज दिया।

प्रेमचन्द : जब खुदा मिर्च बनाता है तो उसमें उसके गुण चरपराहट, रंग रूप इत्यादि, कौन पैदा करता है।

तीसरा यात्री : खुदा ही बनाता है।

प्रेमचन्द : जब खुदा ने रूहें बनाईं तो उनके गुण भी उसी ने बनाये होंगे।

तीसरा यात्री : हाँ-हाँ और क्या।

प्रेमचन्द : जब खुदा ने रूहों में अपनी इबादत करने के लिये गुण दिये तो उसके खिलाफ रूहों में खुदा की आज्ञा न मानने का गुण कहाँ से आ गया।

तीसरा यात्री : वह तो शैतान बहकाया करता है।

प्रेमचन्द : क्या शैतान को खुदा ने पैदा नहीं किया। उसमें यह उलटा गुण कहाँ से आ गया और क्या शैतान खुदा के दिये हुए गुणों को भी बदल सकता है ?

पहला यात्री : मैंने कहा था न कि यह कोई दयानन्दी मालूम होता है। तुम्हीं देख लो।

प्रेमचन्द : जहाँ कहीं बुद्धि से काम लेने की बात आई तो दयानन्दी कहकर बात खत्म कर दिया करो। क्या तुम्हें भगवान् ने धोखा देने के लिये बुद्धि दी है या सत्य-असत्य का निर्णय करने के लिये।

सबके सब यात्री एक दूसरे का मुँह देखने लगे और कहने लगे कि भगवान् की बातों को हम नहीं समझ सकते। हम में इतनी बुद्धि नहीं है।

गाड़ी की गति मन्द होने लगी थी। यात्रियों ने नर्वदा मैर

की जय के नारे लगाने आरम्भ किये। प्रेमचन्द होशिंगाबाद स्टेशन पर उतरकर और लारी में बैठकर सन्यासी जी की कुटिया पर पहुँचे जहाँ पर उन्होंने डाकुओं के फन्दे से छूटकर विश्राम करके नास्तिकता को हमेशा के लिये छोड़ दिया था।

देखा कि सन्यासी जी बहुत वृद्ध हो चुके है और आसन लगा कर समाधिमग्न हैं। कुछ देर प्रेमचन्द जी ने बाहर आराम किया और सब सन्यासी जी की समाधि खुली तो दोनों हाथ जोड़कर अपना परिचय दिया। सन्यासी जी ने फौरन पहिचान कर प्रेमचन्द जी को आशीर्वाद दिया और कहने लगे।

सन्यासी जी : वत्स, तुम इतने दिनों बाद यहाँ कैसे आये ? क्या तुमने जो मैंने स्वाध्याय के लिये ऋषियों की बनाई पुस्तकें बताई थीं, नहीं पढ़ीं।

प्रेमचन्द : गुरु महाराज, स्वाध्याय और मनन करते-करते मन की अजीब दशा हो गई है। राग द्वेष की प्रवृत्ति का नाश हो चुका है परन्तु ईश्वर का साक्षात्कार नहीं हुआ। शंकाये मन में उठती रहती हैं।

सन्यासी जी : मैं देखता हूँ तुम्हारा मन सांसारिक बातों में ऊब चुका है। परन्तु ईश्वर का साक्षात् तो योग साधन से हो सकेगा। मेरी आयु अभी कुछ और शेष है यदि चाहो तो मेरे पास कुछ दिन ठहर जाओ। मैं शीघ्र ही तुमको योगाभ्यास करा दूंगा।

प्रेमचन्द : उपकार महाराज, उपकार।

प्रेमचन्द सन्यासी जी के पास ठहर गये और योग साधन करने लगे। कुछ ही समय में सन्यासी जी ने योग साधन के गूढ़ ही भेद उनको बता दिये जिससे वे समाधि में ईश्वर का आनन्द अनुभव करने लगे।

सन्यास

बरसात का मौसम है, नर्बदा पूरे जोर-शोर से कलकल करती हुई मैदानों में बह रही है। दो व्यक्ति आसन जमाये एक कुटिया में प्रभु का आनन्द ले रहे हैं कि यकायक ब्रह्म पुरुष की समाधि टूटी और देखा कि प्रेमचन्द आनन्द विभोर हुए अटल समाधि लगाये हुए हैं। परन्तु अभी उनको इस संसार में कुछ और करना शेष है। अभी संस्कार पूरे नहीं हुये हैं। संन्यासी जी ने फिर समाधि लगायी और प्रेमचन्द जी की समाधि खुलवाने की चेष्टा की। दोनों की समाधि टूटी और संन्यासी जी ने कहना शुरु किया, "वत्स हमारा शरीर पूरा होने का समय आ चुका है। तुम भी पूर्ण योगी और ज्ञानी हो चुके हो। मेरी आज्ञा है कि तुम सन्यास आश्रम धारण करके कुछ परोपकार का काम निष्काम भाव से उस समय तक करो जब तक तुम्हारी आयु पूरी न हो जावे। मैं इस शरीर को कल इसी समय तक अवश्य त्याग दूंगा और तुम इस शरीर को ठिकाने लगा देना।"

प्रेमचन्द की आखें जल से भर गयीं और "जो आज्ञा" कह कर संन्यासी जी से दीक्षा लेकर सन्यास के वस्त्र जो सन्यासी जी के पास थे धारण कर लिये। निश्चित समय आने पर सन्यासी जी की देह पूरी हो गयी और उनकी ज्योति ब्रह्म लोक में जा ठहरी। प्रेमचन्द ने कुटिया को त्याग दिया और पैदल चलते चलते रास्ते में जहाँ भी ठहरते लोगों को उपदेश देते और भ्रमण करते रहे।

निष्काम सेवा

वाह रे वेदोक्त जीवन, ईश्वरी ज्ञान के बताये हुये तरीके पर ईश्वर की आज्ञा समझकर सारे कार्य करना और नतीजे पर

ध्यान न देना, यही जीवन महाराजा राम, राजा हरिश्चन्द्र, भीष्म ने अपनाया। कभी न सोचा कि इससे उन्हें सुख मिलेगा या दुःख कर्मों के फल से उदासीन, चाहे इस मार्ग पर चलने से अपने प्यारे से प्यारा छुट जाय या अपना जीवन कष्टमय हो जाय अथवा मृत्यु ही आ जाय। कुछ ही हुआ करे। जिस मनुष्य ने अपने जीवन के पहले २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्या अध्ययन में विताये हों और जिसने समझ लिया हो कि ईश्वर ने अपने दयालू स्वभाव से सृष्टि की रचना की और अपने प्रिय जीवों के साँसारिक सुख की प्राप्ति के कैसी कैसी वस्तुयें बनायीं और फिर आनन्द की प्राप्ति के लिये मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा प्राण इत्यादि इन्द्रियाँ दीं, जिसने यह समझ लिया हो कि पाँचों क्रियांय उन पर चलना, नीचे चलना, बराबर चलना, सिकुड़ना तथा फैलना क्रमशः अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी तथा आकाश में रहती है, जीव असंग है और गुण गुणों में बरत रहे हैं, जो जानता हो कि यह शरीर भगवान ने हमें आनन्द प्राप्ति के लिये दिया है, जिसने पढ़ा हो कि सारा विश्व एक ही सद्चित्तानन्द की सत्ता से प्रगट हुआ है और जीव को केवल आनन्द प्राप्ति के लिये रचा है और फिर यह भी समझता हो कि भगवान ने वुद्धि अपना ज्ञान प्राप्त करने के लिये दी है इत्यादि इत्यादि, फिर वह क्यों अपना अहंकार हर कार्य में प्रयोग करता हुआ कर्मों के बन्धन में जाने लगा। वह तो पूर्ण ज्ञानी होकर सब में ईश्वर का रूप समझता हुआ ईश्वर की आज्ञानुसार निष्काम कर्म करता हुआ ईश्वर ही को सब कार्यों को अर्पण करता हुआ ईश्वर ही को क्यों न जिम्मेदार ठहरायेगा।

यही हाल हमारे डाक्टर रतन चन्द वेदाचार्य का है। शहर के पास एक कोठी नई तैयार हुई है। दरवाजे पर बोर्ड लगा है :

धमार्थ औषधालय

संस्थापक डा० रतनचन्द शर्मा वेदाचार्य, इन्दौर

चिकित्सा तथा औषधियों की कोई कीमत नहीं ली जाती। सामने रहने का मकान है। बराबर में रसायनशाला है दूसरी तरफ औषधालय है। रतनचन्द निष्काम कर्मयोगी बने हुये हैं अपना सारा समय परोपकार में लगाये हुये हैं। आगे का भोग नहीं बनता। जीवन मुक्त की दशा है। पिछला भोग भोग रहे हैं जो संस्कार में जमा रहता है जैसे कुम्हार का चक्र डंडा हटाने पर भी चलता ही रहता है जब तक कि उसके घूमने का संस्कार समाप्त नहीं हो जाता। सब आ आकर दवा ले जाते हैं और जिस से जो कुछ बन पड़ता है दरवाजे पर लगे सन्दूक में डाल जाता है। कोई एक दूसरे से कहता जाता है, भगवान वैद्य जी की उन्नति करे, भगवान उन्हें खुश रक्खे, बड़े सन्तोषी ब्राह्मण हैं। न किसी से राग है न द्वेष। सभी से प्रेम करते हैं।

हजारों गरीब, अमीर, सेठ, साहूकार तथा व्यौपारी लोग नाम सुन सुन कर आते और रोग मुक्त होकर किसी ने रसायन-शाला बनवायी है तो किसी ने औषधालय किसी ने सदर दरवाजा तो किसी ने रहने का मकान। यदि एक वस्त्र विक्रेता वस्त्र भेंट करता है तो दूसरा आढ़ती नाज का ढेर लगा जाता है। विनोद कृष्ण कुमार जी की पुत्री बड़े सुख से पतिव्रत धर्म पालन करते हुये अपने जीवन से पूर्ण सुखी है। क्या यह संसार में स्वर्ग नहीं है। मोक्ष तो रतनचन्द जी ने जीवन में ही पाली है। यही वेदोक्त शिक्षा का फल है। हे भगवान, फिर से वह दिन लाओ जो भारतवर्ष फिर से संसार का शिरोमणि बन कर वेदों का प्रचार संसार के कौने कौने में फैला दे और भारत में रतनचन्द जैसे व्यक्तियों की संख्या अनगिनत बढ़े।

कर्म-योग

जेठ सुदी दसवीं के दिन गंगा स्नान करने का एक हिन्दुओं

पूजा कर रहे हैं तो तुम्हारा यह रामायण और भागवत का प्रचार कुछ अर्थ नहीं रखता। भाइयो, समार में ऐसी पूजा करने वालों की संख्या बहुत है पर अशान्ति बढ़ती ही जाती है। इसका कारण ही यह है कि ईश्वर को एक देशीय सब सन्तों ने मान रक्खा है और वह मन्दिरों, मस्जिदों, गिरजाघरों से बच कर पाप कर्म करने में नहीं घबराते क्योंकि वह पाप करते समय वहाँ ईश्वर की उपस्थिति को नहीं समझते। पाप करने का कारण ही ईश्वर को हर स्थान पर उपस्थिति न मानना है। यदि ईश्वर को समझ लिया जावे कि हर स्थान पर उपस्थिति, सब का निर्माता और स्वभाव से न्यायकारी है और हमको अपने पाप कर्म का दण्ड अवश्य मिलेगा कोई शक्ति चाहे प्राकृतिक हो या दैवी, गंगा हो या नर्वदा पाप के दण्ड से मुक्त नहीं कर सकती, तो मनुष्य कभी पाप न करें। भाईयो, आप लोगों को ईश्वर के गुण स्वभाव मालूम करने आवश्यक हैं और वह केवल ऋषि मुनियों की पुस्तक से ही मालूम हो सकते हैं। बुद्धि से निर्णय करने के बाद कि यह किसी जीव को कष्ट तो नहीं पहुंचता कर्म करने की आवश्यकता है। वेद में जीवों को जो कर्म का उपदेश दिया है वह सब जीवों की भलाई के लिये समान है और बुद्धि के अनुसार है उनको वैसा ही करने में कोई पाप नहीं होता। यदि मनुष्य ईश्वर की आज्ञा को समझते हुये कर्म करे तो वह निष्काम कर्म होता है। हर एक मनुष्य को चाहिये कि वह अपनी सन्तान को २५ वर्ष तक जो ज्ञानावस्था है ब्रह्मचर्य रखा कर सांसारिक और ईश्वर का ज्ञान करावें। फिर दूसरी अवस्था कर्म काण्ड की है जो गृहस्थाश्रम है। यह सब से बड़ा आश्रम है क्योंकि इसी से शेष तीनों आश्रम चलते हैं। इसमें यदि सत्य और असत्य निर्णय करने की बुद्धि प्राप्त हो गयी है तो वह अवश्य ही अपनी आत्मा और दूसरों की आत्मा का ध्यान रखते हुये कर्म करेगा। बच्चों का पालन पोषण, उनको

विद्या इत्यादि जिससे संसार की भलाई अपेक्षित है करेगा। अर्थात् वृद्ध माता पिता की सेवा, विद्वान और अलिप्त सन्यासियों के भोजन का प्रबन्ध करेगा। वह दूसरे जीवों, जो अग के भोग योनियों में हैं, उन पर भी दया करेगा। हर एक कर्म के करने से मन के अन्दर एक संस्कार उत्पन्न होता है और उस संस्कार से दो बीज, पाप और पुन्य, अंकुरित होते हैं जिनका फल दुःख और सुख है। जैसे गहू से केवल गेंहू ही उत्पन्न होता है अन्य अनाज नहीं। इसी प्रकार पाप का फल दुःख है। इस ईश्वरीय नियम को तोड़ने की सामर्थ्य किसी को नहीं है। राग द्वेषों से लिप्त न होकर ईश्वर के बनाये हुये नियमों पर चल कर इस लोक और परलोक दोनों का सुख भोगो जोकि जीवन का वास्तविक उद्देश्य है।

धन्यवाद।

पुरानी भेट

परमानन्द (प्रेमचन्द) हरिद्वार दो दिन ठहर कर लक्ष्मण-भूला की तरफ चल दिये स्वर्गाश्रम में वड़े वड़े सन्तों और महात्माओं से भेंट हुई। एक दिन सुबह को जब वह नाश्ते के लिये एक दुकान पर पहुंचे तो एक बूढ़े मनुष्य पर निगाह पड़ी। डाढ़ी मूँछ लम्बी लम्बी, सर के बाल बिखरे हुये, भौंहों पर सफेदी चहरे पर तेज, एक दुकान से दलिया खरीद रहे थे। परमानन्द ने गौर से देखा और ताड़ गये कि कोई योगी है। उन से बातचीत करने के लिये सोच ही रहे थे कि बूढ़े-महात्मा ने अपने आप ही परमानन्द से कहना आरम्भ किया।

"ओह बेटे, प्रेमचन्द, तुम यहाँ कहाँ ?

परमानन्द : महाराज मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आप ठाकुर साहब रामसिंह जागीरदार विक्रमपुर हैं।

ठाकुर साहब : तुम्हारी स्मृति तो कभी गलती करती ही नहीं। पहले यह बताओ कैसे आये, कहाँ ठहरे हो। क्या तुमने सन्यास ले लिया है

परमानन्द : हाँ ठाकुर साहब, मैंने अब सन्यास ले लिया है और भ्रमण करता हुआ इधर आ निकला हूँ। आप से मिलकर चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। आप तो बतायें आप यहाँ कैसे हैं और क्या कर रहे हैं।

ठाकुर साहब : मैं एक महात्मा की सेवा में रह कर योगाभ्यास कर रहा हूँ।

ठाकुर साहब स्वामी परमानन्द जी को अपने साथ ले गये और उनके खाने पीने का प्रबन्ध किया। फिर उनको अपने साथ अपने गुरू जी के पास ले गये और गुरू जी से परिचय कराया। महात्मा जी भी परमानन्द जी से मिलकर अति प्रसन्न हुये। परमानन्द जी का भी मन वहाँ रम गया और परमान्द एवं ठाकुर साहब व महात्मा जी तीनों एक साथ रह कर अपने अपने ज्ञान और उपासना में लीन हो गये।

जंगम तीर्थ

यूं तो आजकल सत्संग का शब्द प्रायः प्रतिदिन ही जिह्वा पर आता है चाहे वहाँ सत्य के विरूद्ध ही बोला जाता हो परन्तु वास्तव में जो सत्संग है वह आज उस पर्वत पर बैठे उन तीन योगियों के बीच चल रहा है। देखो ठाकुर साहब किस प्रकार आड़े तिरछे प्रश्न प्रेमचन्द जी से कर रहे हैं और उनके उत्तर योगी गुरु सुनकर प्रेम मग्न हो रहे हैं। उन सब के मन का संकल्प ईश्वर प्राप्ति के लिसे दृढ़ होता चला जाता है। ईश्वर में श्रद्धा भक्ति और उनके विचार अटल होते चले जा रहे हैं। जरा सुनो तो।

ठाकुर साहब : परमानन्द जी इतने दिन अभ्यास करते कर हो गये, ऋद्धियाँ सिद्धियाँ भी हासिल हो गयीं परन्तु अब आ अंधकार सा हो रहा है। न तो शरीर ही छूटता है और न आ बढने को प्रकाश ही दीखता है।

परमानन्द : सिद्धान्त यह है कि पहले देखा जाता है पि चला जाता है अर्थात पहले ज्ञान हासिल करें फिर उस प आचरण करें। जो व्यक्ति बिना ज्ञान प्राप्त किये योग आरम्भ कर देते हैं वह इन सिद्धियों में आकर फँसे रह जाते हैं अ अपना दम्भ दिखलाने में लग जाते हैं। उनका योग भ्रष्ट हो जा है और संसार में रहते हुये या तो स्वार्थ में पड़ जाते हैं या कि इन्द्री के भोग में फस जाते है जिससे फिर वही आवागमन चक्र चलने लगता है।

ठाकुर साहब : तो हमारे इस परिश्रम से क्या लाभ ; क्या हम शरीर को छोड़ कर जैसे बुलबुला फूट कर पानी मिल जाता है ब्रह्म में विलीन हो जायेंगे तो हमारे पुरुपार्थ फल क्या मिला। अपने आस्तित्व को भी खो बेठेगे।

परमानन्द : ब्रह्म में विलीन होना तो समुद्र में डूबना मन है। जीव परिछिन्न है वह अनन्त नहीं हो सकता। जीव इ प्राप्त करके योग द्वारा आनन्द रूप अवश्य हो जाता है अथ सत्‌चित्त वह है ही और आनन्द ईश्वर से प्राप्त करके सच्चि नन्द अवश्य हो जाता है परन्तु फिर भी ईश्वर की अपार महि का पार नहीं पा सकता। जिस बात को जानना चाहता है ज लेता है।

ठाकुर साहब : यह तो बताओ कि प्रलय में भी तो त सूक्ष्म शरीर जीवों से अलग हो जाते हैं, मन भी प्रकृति में लय जाता है फिर जीवों के संस्कार कहाँ रह जाते हैं। उनकी

मोक्ष हो ही जाती होगी। हम क्यों इस चक्कर में पड़े हुये हैं।

परमानन्द : प्रलय में जीवों के मन के सँस्कार ईश्वर ज्ञान में रहते हैं। जब सृष्टि की रचना होती है और मन बनत है तो ईश्वर के ज्ञान से हर जीव को उसका संस्कार फिर मिर जाता है। मोक्ष नहीं होती।

ठाकुर साहब : मनुष्य जब शरीर छोड़ता है तो फिर उनको कैसे जीवन मिलता है।

परमानन्द : शरीरधारी जब शरीर जोड़ता है तो उसके साथ उसके औजार मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ सूक्षम अवस्था में उसके साथ जाती हैं। नीच कर्म वाले पुरुष अपने कर्मों के अनुसार भोग यौनि में चले जाते हैं और बीच की हालत वाले मनुष्य अपने कर्मानुसार अमीर, गरीब गृह में जन्म लेते हैं। मरने के बाद जीव आकाश में रहता है और पृथ्वी पर आकर अन्न या फल इत्यादि में दाखिल होकर पुरुष की खुराक के साथ उसके शरीर में जाकर उसके वीर्य में प्रवेश कर जाता है और वीर्य से मां के पेट में पलता है। शरीर पूरा बन जाने पर ईश्वर के नियमों के अनुसार पेट से बाहर आता है परन्तु जो पुरुष ज्ञान प्राप्त करके वैराग्य ले लेते हैं, निष्काम करके अपने अन्तःकरण के मल, विक्षेप और आवरण को दूर कर देते हैं और फिर उपासना से ब्रह्म का साक्षात करते हैं और अपने जीवन में मुक्त दशा प्राप्त करके इस शरीर को छोड़ते हैं तो सूक्षम शरीर जो जीवों को आनन्द की प्राप्ति के लिये बतौर औजार के मिलता है उनके साथ नहीं जाता, क्योंकि जिस काम के लिये यह औजार दिया गया था अब उसकी आवश्यकता नहीं रही।

ठाकुर साहब : तो फिर हम कहाँ होंगे और क्या करते रहेंगे।

परमानन्द : हम ब्रह्म लोक में रहेंगे अर्थात जहाँ जहाँ ब्रह्म है बिना शरीर के ही अपनी ही शक्ति से बिना रोक टोक विचरेंगे। ईश्वर का आनन्द साँसारिक सुखों से लाखों गुना अधिक शास्त्रों में बताया है। वह कैसा होगा यह कोई नहीं बता सकता। जैसे गुड़ के चखने वाला गूँगा व्यक्ति गुड़ का स्वाद नहीं बता सकता। फिर जीव एक प्रान्त काल के बाद इस सृष्टि में फिर आ जावेगा

ठाकुर साहब : प्रान्त काल क्या होता है।

परमानन्द : एक बार सृष्टि का पैदा होने से प्रलय तक ब्रह्म का एक दिन होता है और प्रलय से सृष्टि उत्पत्ति तक ब्रह्मा की एक रात होती है। इस प्रकार ब्रह्मा के सौ वर्ष अर्थात सृष्टि : छत्तीस हजार बार बनने और बिगड़ने का समय मोक्ष की अवधि है। जबकि सृष्टि और प्रलय का समय ही अरबों वर्ष है तो तु से एक प्रान्तकाल का हिसाब भी नहीं लग सकेगा।

ठाकुर साहब : जब जीव का पिछला भोग ही नहीं रहत तो फिर जन्म क्यों लेता है।

परमानन्द : जैसे लोहा अग्नि में जाकर अग्निरूप हो जा है और अग्नि से अलग होने पर फिर लोहा हो जाता है ऐसे जब जीव के पास से उसके ज्ञान प्राप्त करने के साधन औजार उस से मोक्ष में अलग हो जाते हैं तो उसका ज्ञान घ लगता है। जिसका आदि है उसका अन्त अवश्य होता है।

ठाकुर साहब : तो फिर वही मुसीबत होगी ?

परमानन्द : मुसीबत कुछ भी नहीं। जीव बगैर माँ बाप यौवन काल में सृष्टि के आदि में ही कर्मयौनि में जन्म लेता उसे माँ के पेट का दु:ख नहीं सहना पड़ता। फिर ज्ञान प्र करने के साधन दिये जाते हैं और वह ज्ञान प्राप्त करके म प्राप्त कर लेना है। यदि ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध चलते हैं

उभय यौनियों में जा पड़ते हैं अर्थात माँ के पेट से पैदा होने ल
है। जब तक कि फिर दोबारा आनन्द को प्राप्त न हो।

ठाकुर साहब : तो क्या हम उसी मोक्ष के अधिकारी न
हुये हैं।

परमानन्द : क्यों नहीं हुये हो ठाकुर साहब। ज्ञान के बग
मुक्ति नहीं होती। हमारा पग अब पीछे हटने वाला नहीं
सिद्धिया और संयम से हम आगे बढ़ चुके है। रजोगुण, तमोगु
पीछे रह गये हैं बस अब तो विवेकज ज्ञान अर्थात बगैर गुरू आ
के बताये हुये ज्ञान होने का नम्बर आवेगा। उसके बाद निर्विकल
समाधि लगेगी और जीव अपने ही रूप में प्रतिष्ठित होकर उ
के अन्दर व्यापक ब्रह्म के आनन्द को अनुभव करेगा। संस्का
पूरे होने पर जीव शरीर से अलग हो जावेगा और परमानन्द मे
विचरेगा।

ठाकुर साहब : अच्छा भाई परमानन्द जी अब बस करो।
ईश्वर से मिलने के लिये हृदय तड़पने लगा है। अब अभ्यास
का समय हो गया है। अटल समाधि लगा दो और जब तक
आनन्दन में मिल जाओ तब तक आसन मत डिगाओ।

परमानन्द : हाँ हाँ पुरुषार्थ करने से ही कुछ प्राप्त होता है।
बिना पुरुषार्थ करे मुंह में रक्खा खाना भी पेट में नहीं जाता।
पुरुषार्थ का फल अवश्य मिलेगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

यह कह कर तीनों मूर्तियाँ उठ खड़ी हुई और अपने संकल्प
की पूर्ति में संलग्न हो गई।

ध्यानावस्था

(पाठकगण आपने उस साँसारिक सुख भोगने में आसक्त
कुंवर चन्द्रसिंह का अन्त देखा, क्या हुआ? समुद्र की भेंट। डा०
रतनचन्द वेदाचार्य के जीवन का हाल पढ़ा। वह गृहस्थाजीवन

में ही मुक्ति का आनन्द ले रहे हैं। हैड मास्टर कृष्ण कुमार भी देवताओं की पूजा करते करते अपनी मनोकामनाओं को सफल बनाते हुये डिप्टी डायरेक्टर आफ ऐजूकेशन हो गये। परन्तु ठाकुर रामसिंह और प्रमचन्द न जाने कौन सी धातुओं के बने हैं कि इनका ड्रामा ही खतम नहीं होने पाता। अब मैं आपका समय और अधिक नहीं लूंगा केवल अन्तिम दृश्य दिखाना चाहता हूँ।।

मन्द मन्द हवा चल रही है। अंधेरे में कुछ प्रकाश दिखायी देने लगा है। जंगल और पहाड़ सभी ईश्वर की याद में मौन धारण किये हुये हैं। श्री भागीरथी गंगोत्री से प्रारम्भ होकर कलकल करती हुयी यहाँ आकर वह भी मौन हो जाती है। क्यों? इसलिए कि इन तीनों अवधूतों का ध्यान भंग न होने पावे जो न मालूम कब से आनन्द रूप की प्राप्ति के लिये आसन लगाये आपा भूले हुए बैठे हैं।

अहा, इन लोगों को क्या सूझी जो ऐसे जाड़े पाले में अपने घर के पलंग और गद्दों को त्याग कर अपने नाना प्रकार के ऐश्वर्य को छोड़ यहाँ पर्वतीय क्षेत्र में आ विराजे। भिन्न प्रकार के रसिक पदार्थ तो क्या इन्द्र के अखाड़े की अप्सरायें भी इनका आसन नहीं डिगा सकीं। हे भगवान यह मनुष्य हैं या पत्थर। तनिक इन्हें पुकारो तो सही। कोई सुनवाई नहीं।

जरा छूकर देखो न, चेतनता है न नाड़ी में गति। अरे जरा मुख तो देखो, सब मुरझाये हुए। भइया जरा इन्हें हिला कर ही देखो। यह लो यह तो तीनों ही लुढ़क गये क्या हो गया इन्हें, वही जो सब का अन्त होता है, कोई नयी बात नहीं, संसार में सैकड़ों आये और चले गये।

आखिर इन लोगों ने क्या किया। क्या अन्तःकरण की गाँठ खुल कर बुलबुले की तरह पानी में मिल कर अपने अस्तित्व को भी खो बैठे या किसी चतुर्भुजी रूप का दर्शन कर रहे हैं या स्वर्ग

में पहुंच कर अप्सराओं और सुख का आनन्द ले रहे हैं। नहीं नहीं यह कुछ नहीं। वह तो अपने ही रूप में सर्वव्यापी आनन्दरूप ब्रह्म के आनन्द सागर में एक सी ही दशा में आनन्द विभोर हो रहे हैं।

वह देखो इन काली पुतली वाली आँखों से नहीं बल्कि ज्ञान चक्षु से देखो, दिव्य दृष्टि से देखो, अपनी आत्मा से देखो, बिल्कुल स्वतन्त्र, शरीर का कोई बन्धन नहीं. गन्दगी से बिल्कुल पवित्र अपना ही चेतन्य रूप और प्राप्त किया हुआ आनन्द, घूमने विचरने को अपार ब्रह्म, जरासी देर में इधर से उधर।

कैसे ? मोटर या हवाई ज़हाज से। नहीं, केवल संकल्पमात्र से। संकल्प किया और वही सामने। देखने को ईश्वर के जलवे। क्या क्लोथ या शुगर मिल या सिनेमा अथवा अप्सराओं के नृत्य और गाने आदि ? नहीं, नहीं, हजारों सूर्य, लाखों चन्द्रमा, करोड़ों सितारे, अनगिनत ब्रह्माँड, अनन्त शक्तियों के दृश्य और उनका विज्ञान, हमारी पृथ्वी कैसी तेजी से अपने चारों ओर चक्कर लगा रही है, सूर्यदेव किस प्रकार अपने सारे ब्रह्माँड को किस तरह से उनका आधार बनकर अपनी कीली पर चक्कर लगा रहे हैं। ओह मनुष्य की बनायी हुयी एक छोटी सी मशीन देख कर चक्कर में पड़ जाना पड़ता है तो फिर उस अनन्त शक्ति के अनेक दृश्यों की महिमा को कौन वर्णन कर सकता है। किसी की शक्ति है कि उस परब्रह्म आनन्द को जो वह उठा रहे हैं अपनी लेखनी से बयान कर सके।

सभी पवित्र आत्मायें जिन्होंने इस सृष्टि में राम, कृष्ण, हरिश्चन्द्र, गौतम, कणादि, पतन्जलि, व्यास, कपिल, महर्षि दयानन्द का पार्ट खेला, इन तीनों की आवभगत कर रहे हैं। यह तीनों तो अब उस महान शक्ति की गोद में किलोलें कर रहे है जिसके जरा से इशारे पर बड़े बड़े चक्रवर्ती राजा अपना मस्तक

झुकाते हुए उसकी आज्ञा पालन करने में एक सेकिन्ड भी विलम्ब न करके अपनी तमाम शान शौकत को छोड़ कर इस संसार से सिधार गये। अहा वह तो उस परम आनन्द को अनुभव करते हुए "अहं ब्रह्म" का नारा लगा रहे हैं। संसार का अस्तित्व जो साँसारिकों की निगाह में अस्तित्व रखता हुआ मालूम होता है इनकी निगाहों में कुछ और ही विशेषता दिखा रहा है। उनकी आत्मिक दृष्टि जिस वस्तु पर पड़ती है अन्दर तक घुस जाती है। बजाय ऊपरी रंग रूप के अन्दर की हालत मालूम कर लेती है कि किस प्रकार एक एक परमाणु क्रिया में है। यह परमाणु ही कभी कोई शक्ल पकड़ लेता है कभी किसी सूरत में दीखता है और यह सारा विश्व ही ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कोई स्वप्न देखा हो। किस प्रकार से यह परमाणु रूप, स्पर्श, रस और गन्ध के स्वाँग भर भर कर अविद्या में फंसे जीवों को जादूगर की तरह अपना खेल दिखा रहा है। उनको सिवाय ईश्वर की सत्ता के और किसी की सत्ता नहीं मालूम पड़ती। यही वेदों का अन्त है। यहाँ आकर तीनों, वेद ज्ञान, कर्म और उपासना समाप्त हो जातेहैं जैसे नाव आदमी को पार लगा देती है। इससे आगे कुछ नहीं है।

मुसाफिर है तू ऐ वाजारे हमकाँ के तमाशाई,
कहां तक इव्लहाना खुदनुमाई और खुदराई।
जरा चश्मे बशीरत खोल गर रखता है दानाई,
तेरे किस काम आवेंगे ख्यालाते मनोभाई।
उड़ी खुश्बुए गुल है रंग रू से नसतरन फीका,
वउजलत फूल चुन होने को है रंगे चमन फीका।

(ऐ इस संसार के तमाशा देखने वाले, तू एक यात्री है। कहां तक मूर्खता के साथ अपने को दिखाता रहेगा और अपनी चलाता रहेगा। जरा अपनी तेज रोशनी वाली आँखों को खोल, यदि तू बुद्धि रखता है। तेरे विचार "मैं और मेरा" तेरे किस

काम आवेंगे। फूलों की सुगन्ध बढ़ चली है और नसतरन का फूल फीका पड़ चुका है। जरा शीघ्रता से फूलों को चुन ले क्योंकि इस संसार रूपी बाग का रंग फीका पड़ने वाला है।

उपसंहार

इससे आगे यदि और इच्छा सुनने की है तो स्वप्न अवस्था से जागृति अवस्था में आओ। आँख पर हाथ फेरो तो फिर वही यात्री और शिवजी महाराज का शिवालय और पंडित जी महाराज अपनी कथा सुना कर अपनी पुस्तक बाँध रहे हैं।

पंडित जी बोले "ऐ यात्री क्या तूने सत्य की कथा सुनी और सत्य को पहचाना या वही जैसे का तैसा ही रहा। क्या तेरे हृदय की प्यास बुझी या नहीं। इस कथा के सुनने से तुझे मालूम हुआ होगा कि सम्भव और असम्भव का नियम मनुष्य का बनाया हुआ नियम नहीं है। यह ईश्वर का बनाया हुआ है। जो सृष्टि का नियम है वह भी ईश्वर का ही नियम है और बुद्धि भी ईश्वर की दी हुई है। इसलिये बुद्धि के अनुसार ही ईश्वर के नियम होते हैं। तूने अपने अर्थात जीव के गुणों का भी ज्ञान प्राप्त किया कि तू सत्‌चित है और ज्ञान व प्रयत्न वाला है। तूने यह भी जाना कि जीव को ज्ञान ईश्वर के ही भंडार से मिल सकता है। तूने प्रकृति को भी जाना कि उसमें आनन्द नहीं है और जो भी सुख उससे प्राप्त होता है वह थोड़ी देर के लिये इन्द्रियों की तृप्ति से होता है। तूने यह भी समझ लिया कि जीवों को जो देह दी जाती है वह साधन के तौर पर ईश्वर की ओर से आनन्द प्राप्त करने के लिये दी जाती है और उस आनन्द की प्राप्ति के लिये मन की वृत्तियों का विरोध करना और निष्काम कर्म करना आवश्यक है। क्या तू यह भी समझ गया कि मनुष्य का पहला कार्य ज्ञान प्राप्त करना है जिससे वह आगे बढ़ सके और जो

अविद्या जीव में रहती है उसे दूर कर सके। कहाँ तक कहूँ अगर तुझे जिज्ञासा हो गयी तो आगे ऋषि मुनियों की बनाई किताबों का स्वाध्याय करना जिन से निश्चयात्मक बुद्धि बढ़ेगी। मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ कि तुम पहले मनुष्य हो जिसने इस धर्म उपदेश को शान्ति के साथ सुना है और नहीं तो मनुष्य प्रायः उकता कर चले जाते हैं।

पंडित जी "ओ३म्" कह कर मौन हो गये। यात्री का मौन टूटा। ऊपर देखा नीचे देखा और चारों तरफ फिर फिरकर देखा, सर पर हाथ फेरा। ठन्डी श्वाँस ली और बोला, "ओह, यह ईश्वर का ज्ञान और परम दयालु का स्वयं ही दिया हुआ जिस के सुनते सुनते मैं आनन्द में विभोर हो गया, फिर उस पर अमल करने से कहाँ पहुँचूँगा। हे ईश्वर आपको धन्य है। हे भारतवर्ष तुम धन्य हो कि ईश्वरीय ज्ञान यहाँ मौजूद है तभी तो सृष्टि के आदि से करोड़ों वर्ष द्वापर युग के अन्त तक आर्य लोगों का तमाम पृथ्वी पर राज्य रहा और सभी विदेशी भारतवर्ष को मस्तक नवाते रहे। जब से यह ज्ञान लोप हुआ सैकड़ों मत मतान्तर पैदा हो गये। हमारा इस से अधिक और क्या दुर्भाग्य होगा कि हमारे देश में स्वतन्त्र होने के बाद भी यही पश्चिमी शिक्षा दी जा रही है और धार्मिक शिक्षा पर साम्प्रदायिकता का दोष लगाया जा रहा है। प्रत्येक मनुष्य इस संसार में आनन्द ही चाहता है और वह वैदिक शिक्षा ही उसको उस असली आनन्द को प्राप्त करा सकती है। उस पर साम्प्रदायिकता का दोष कैसे लग सकता है जो

दो जो आपकी दी हुयी शिक्षाओं पर आचरण करके सँसार का कल्याण करें।" इतना कह कर यात्री ने कुछ दक्षिणा हाथ में देकर पंडित जी को शीश नवाया।

"भाई इस कथा पर कोई चढ़ावा नहीं चढ़ाया जाता।" पंडित जी ने कहा। "मेरे ब्राह्मण होने का उत्तरदायित्व है जिज्ञासुओं को उपदेश देना। मैंने तुम्हें उसका अधिकारी समझते हुये ब्रह्म ज्ञान या सत्यनारायण की कथा का उपदेश किया है। इस पर चलने से इस संसार सागर से पार हो जाओगे।"

यात्री ने चरण छूकर फिर "धन्यवाद" कहा और आँखों में आँसू भरे अपनी राह पर चल पड़ा।

॥ ओ३म् तत्सत् ॥